CHAPTER 31

HINDI

Doctoral Theses

01. अनुरंजन कुमार

उत्तर-छायावाद और हिंदी आलोचना।

निर्देशक : प्रो. अवनीजेश अवस्थी

Th 28099

सारांश

उत्तर-छायावाद और हिंदी आलोचना, जिसमें मस्तिष्क व ह्रदय की सुगबुगाहट देखने को मिलती है| भारतीय ज्ञान परम्परा की आनंदमयी चेतना में, स्वतंत्रता संग्राम की उथल -पुथल भरे दौर में दुःख की छाया को सहते हुए स्वतंत्रता की आश में भारतीय जनमानस हिलोरे ले रहा था | (लगभग सन 1925 ई. से) 25 वर्षों की तपस्या-संघर्ष ने 'कठिनता' से 'सरलता' की यात्रा की है, जिसमें कवि और आलोचाक अपने व्यक्तित्व से "उत्तर-छायावाद और हिंदी आलोचना" को मांझते हैं | भौतिक दुःख और अध्यात्मिक दुःख दोनों को साधकर मानव सहजता, सरलता व् स्पष्टता में राष्ट्र की उन्मुक्ति का संधान करता है| यह दौर व्यक्ति मानव से समाज मानव और समाज मानव से राष्ट्र मानव की यात्रा को इंगित करता है| जिसमें हिंदी आलोचना कम मुखर होती है | विवाद की स्थिति किसी को व्यापक-महान बना देती है तो वहीँ विश्व व्याप्ति दृष्टि भारतीय जन बोद्धिकता को असली मान लेती है| अभिधा में लिखी गई कविता की आलोचना कम ही होती है यह "उत्तर-छायावाद "को देखकर सहज ही ज्ञात हो जाता है | ऐसा इसीलिए कहा जा सकता कि क्योंकि छायावाद में लाक्षणिकता और अस्पष्टता की छाप है लेकिन आलोचना मुखरता से साथ होती है| वहीँ उत्तर-छायावाद भाव और भाषा में सरल,सुबोध व स्पष्ट ,जिसकी नीव छायावाद में ही पर गई थीं | फिर भी हिंदी आलोचना में इस पर कम ही लिखा| कारण बहुत से हो सकते हैं लेकिन मूल बात यह है कि उत्तर-छायावादी आलोचना राष्ट्र के संकट की स्थिति में प्रकाश का काम आने वाले समय में करेगी| व्यक्ति, समाज और राष्ट्र तीनों के द्वन्द की स्थिति में क्या चुनाव करना है? यह उत्तर-छायावाद की अनुभूति-संवेदना में निहित है |

विषय सूची

1. हिन्दी आलोचना : अर्थ, स्वरूप व परिभाषा और विकास 2. उत्तर छायावाद : प्रारंभ की नियति 3. उत्तर छायावाद के संदर्भ में (हिन्दी आलोचना) 4. आलोचना दृष्टि के परिपेक्ष्य में 'उत्तर - छायावाद'। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

02. अभय रंजन

समकालीन हिंदी यात्रा-साहित्य में जीवन-दर्शन।

निर्देशिका : प्रो. निरंजन कुमार

Th 28100

सारांश

मैं अपने शोध-प्रबंध `समकालीन हिन्दी यात्रा-साहित्य में जीवन-दर्शन को पाँच अध्यायों एवं चौबीस उप-अध्यायों के माध्यम से इक्कीस यात्रा-साहित्य के आधार पर प्रस्तुत कर रहा हूँ। मूलतः ये इक्कीस यात्रा साहित्य के रचनाकार युवा हौसलों के साहसिक उड़ान से लेकर अनुभवसिक्त रसायन तक की यात्रा है। पत्रकारों की खोजी दृष्टि, स्त्रियों की पैनी दृष्टि के साथ-साथ हाशिए के समाज का लेखा-जोखा पेश किया है। प्रथम अध्याय यात्रा-साहित्य का स्वरूप और आयाम में यात्रा साहित्य का सैद्धांतिकी का अध्ययन किया गया है। दूसरे-तीसरे अध्याय में पर्यावरणीय चिंतन व चुनौतियाँ को यात्रा-साहित्य में रेखांकित व विश्लेषित किया गया है। हिमालय से लेकर कैलास-मानसरोवर की यात्रा शेखर पाठक और गगन गिल करते हैं तो लद्दाख की यात्रा कृष्णा सोबती करती हैं। समूचा विस्तृत हिमालय कई आस्थाओं का केंद्र स्वरूप है। लेकिन हिमालय एशिया के कई देशों का जीवन सँवारने (नदियों के माध्यम से) के साथ-साथ पारिस्थितिकी तन्त्र को मजबूती से थामें हुए है। दर्रा-दर्रा हिमालय और दरकते हिमालय पर दर बदर के माध्यम से चिकित्सक अजय सोडानी सपत्नीक एकल यात्रा उत्तराखंड के रास्तों से करते हुए दुर्गम फूलों का दर्शन कर वापस लौटते हैं। नदी (गंगा, नर्मदा, ब्रह्मपुत्र तथा फेनी) के माध्यम से जीवन सँवारते-सँवारते कब और क्यों विध्वंसक हो रही है, उनके कारणों की पड़ताल व संभावित समाधान की तलाश की गयी है। अध्याय- चार में यात्रा साहित्य में इतिहास और संस्कृतिबोध का अध्ययन किया गया है। संस्कृति बोध से रूबरू होना सबकी अनिवार्य नियति है । सभी वृत्तान्तकारों का दूसरे के घर, स्थल, देश से मिलने के बाद, खानपान, रहन-सहन, सोचना- समझना प्रतिक्रिया स्वरूप 'मेल्टिंग पॉट' होना अनिवार्य होता है । लेकिन ग्लोबल होती दुनिया में भी हम कितने अलग-थलग हैं। वर्चस्ववादी संस्कृति के खिलाफ की संस्कृति से एक मेव होकर जीने की कोशिश की गई है। इसी संदर्भ में असम, त्रिपुरा, कच्छ के रन, हिमालय की यात्रा, आदिवासी कबीलों की दास्ता, दंतेवाड़ा का सच, इन सब के मौखिक परंपरा में बिखरे कथा सूत्रों को (अलिखित बानगी) को पेश किया गया है । धार्मिक मान्यताओं रीति-रिवाजों सामाजिक मान्यताओं, परंपराओं व विडंबनाओं को भी अलग-अलग जगहों पर रूपायित किया गया है । देशज ज्ञान परंपराओं को रेखांकित करते हुए भारतीय ज्ञान परंपरा की दिशा में यह मील का पत्थर साबित होने जैसा है । अध्याय-पाँच में यात्रा साहित्य और जीवन दर्शन' में तमाम यात्रा वृत्तान्तकारों के यात्रा करने का उद्देश्य एक-दूसरे से नितांत भिन्न होते हुए भी उन सब की दृष्टियां उनके जीवन दर्शन को रूपायित करते हैं । तमाम वह सवाल जब भी दूसरे (अन्य) के समक्ष उपस्थित होने के दौरान पनपे, वे किसी तय उत्तर के बजाय नए उत्तर को तलाशती है। लोक बनाम वैश्विकता, यौनिकता, पारिवारिकता,

नैतिकता जैसे सवालों को समझते हुए एक वैश्विक मानवता की परिकल्पना करती हुई तमाम रचनाएं यायावरी को मुक्ति का प्रतिसंसार साबित करती नजर आती है।

विषय सूची

1. यात्रा-साहित्य का स्वरूप और आयाम 2. यायावरों की दृष्टि में यात्रा 3. यात्रा-साहित्य में पर्यावरणीय चिन्तन व चुनौतिया 4. यात्रा-साहित्य में इतिहास और संस्कृति बोध 5. यात्रा-साहित्य और जीवन-दर्शन। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ।

03. अभिनव प्रकाश

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी सिनेमा में विस्थापन की अवधारणा एवं स्वरूप।

निर्देशिका : प्रो. श्यौराज सिंह

Th 28797

सारांश

विस्थापन मानव सभ्यता की एक मूलभूत गतिविधि है-चाहे वह अपनी इच्छा से हो, चाहे विवशता से। कहना न होगा कि सारी मानव प्रजाति अफ्रीका से उद्भूत है। सबसे पहले मनुष्य ने भोजन की तलाश में स्थानान्तर किया ताकि उसका जीवन बेहतर हो सके। उसके बाद एक देश से दूसरे देश में आवागमन जारी किया पहले पहल यह उत्सुकतावश किया था।हम कह सकते है कि प्रवजन, पलायन, प्रवास और विस्थापन बुनियादी मानवीय गतिविधि है जिनके बिना मानव सभ्यता का विकास मुमकिन न था। जब सिनेमा का दौर आया तो मनुष्यों की सामाजिक गतिविधियों को पहले पहल सिनेमा में दिखाया गया।सिनेमा का शुरुआती सफ़र बहुत ही संघर्ष भरा था जैसे मनुष्यों ने अपनी पहचान बनाने और अपने आप को स्थापित करने के लिए संघर्ष किया। हिंदी सिनेमा के जनक दादा साहब फाल्के ने जब राजा सत्य हरिश्चंद्र फ़िल्म बनाई तो उसमें उन्होंने राजा हरिशंचद्र की जीवन संघर्ष को दिखाया। उनके विस्थापित जीवन को बहुत ही सरलता से परदे पर दिखाया गया था। शुरू शुरू में सिनेमा मनुष्य के जीवन संघर्ष को विषय बनाकर दर्शकों के सामने प्रस्तुत होती है। कहना न होगा कि जब भारत में हिंदी सिनेमा की शुरुआत हो चुकी थी तो लगभग हर भाषा की फ़िल्मों में विस्थापन की समस्या को दिखाने का प्रयास किया गया। हिंदी फ़िल्मों की बात करें तो-राजा हरिश्चंद्र, दो बीघा जमीन, गर्म हवा, मादर इंडिया, वहीं बंगला में स्वर्णरेखा और पार फ़िल्में बनायी। भारत का विभाजन केवल पिछली शताब्दी की ही नहीं, हमारे पाँच हज़ार सालों के इतिहास की भयावह घटना है। फ़िल्म वक्त और टीवी सीरियल बुनियाद में विभाजन के बाद विस्थापन के दर्द को दिखाया गया है। एक नया डायस्पोरा पंजाब में बिहारी मज़दूरों के साथ बन रहा है एक बहुत बड़ा विस्थापन खाड़ी देशों में दक्षिण भारत से हुआ है। वे वहाँ अपमान और असुरक्षा का जीवन व्यतीत कर रहे है। कारण जोहर की कई फ़िल्म में इस घटना को दिखाया गया है। आई प्राउद टू बी इंडियन फ़िल्म में इस तरह की घटनाओं का चित्रण है जिसमे विस्थापित भारतीय परिवार असुरक्षा की जिंदगी व्यतीत कर रहा है

क्युकी उसके पास अपना समुदाय नहीं है। विभाजन के बाद पूर्वी बंगाल से जो विस्थापन हुआ और बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के मुसलमानों को पाकिस्तान जाकर जो संघर्ष करने पड़ें इस पर कोई महत्वपूर्ण फ़िल्म नहीं बनी है। ऋत्विक घटक ने सुवर्ण रेखा में ज़रूर विस्थापन को दिखाया है लेकिन सीधे सीधे नहीं। इस विषय पर पाकिस्तान में ख़ामोश पानी एक उल्लेख करने वाली फ़िल्म है। बलपूर्वक विस्थापन का विरोध हमेशा होता रहा है। इस प्रतिरोध पर केंद्रित तमाम फ़िल्में है। नीचा नगर एक जबरदस्त फ़िल्म है। शायद अकेली फ़िल्म है जिसमें प्रतिरोध सीधे सीधे दिखाया गया है। हिंदी सिनेमा में विस्थापन का चित्रण किन किन परिस्थितियों में हुआ है इसे जानने के लिए मैंने अपने शोध के पाँच अध्यायों में इसे विस्तार से विश्लेषण किया है। जिससे पाठक यह महसूस करेंगे कि साहित्य के साथ साथ सिनेमा भी समाज का दर्पण है। यह नई सदी का सिनेमा केवल मनोरंजन नहीं है।

विषय सूची

1. विस्थापन का अर्थ एवं स्वरूप 2. सिनेमा की विकास यात्रा और विस्थापन 3. 21वीं सदी के भारतीय सिनेमा में विस्थापन 4. 21वीं सदी के हिंदी सिनेमा में विस्थापन 5. 21वीं सदी के हिंदी सिनेमा का शिल्प विधान। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

04. अभिषेक विक्रम

हिन्दी कहानी में तिरस्कृत जीवन के विविध आयाम (विकलांग, भिखारी, एलजीबीटी-क्वेयर, वृद्ध और बाल वर्गों के विशेष संदर्भ में)।

निर्देशिका : प्रो. कुसुमलता मलिक एंव प्रो. चंदन कुमार

Th 28101

सारांश

शोध सार हिन्दी कहानी में तिरस्कृत जीवन के विविध आयाम (विकलांग, भिखारी, एलजीबीटी-क्वेयर, वृद्ध और बाल वर्गों के विशेष संदर्भ में) साहित्य में चुनिंदा तिरस्कृत जीवन तिरस्कृत जीवन से तात्पर्य है वह जीवन जो समाज में हमारे सामने सर्वत्र होते हुए भी कभी सशक्त न हो सका। वर्षों से लोग अपने आसपास ऐसे लोगों को देखते आए हैं जिन्हें वास्तव में वे देखना नहीं चाहते। उदाहरण के तौर पर विकलांग, भिखारी और किन्नर आदि को देखा जा सकता है। इस अध्याय का उद्देश्य उक्त वर्गों की अबतक की साहित्यिक यात्रा को विस्तार से दर्ज़ करना है। संविधान ने यदि हत्या का अधिकार दे दिया होता तो सबसे पहले वही लोग मारे जाते जो दूसरों के बरक्स बेहद कमज़ोर और कहीं भी न टिक पाने वाले होते। हिंदी कहानियों का निःशक्त समाज इस अध्याय में विकलांगता के दोनों रूपों पर विचार किया गया है । पहला है शारीरिक विकलांगता और दूसरा है मानसिक विकलागंता। इस अध्याय में हिंदी साहित्य में चित्रित विकलांगता के दोनों प्रकारों; मसलन- शारीरिक विकलांगता और मानसिक विकलांगता का साहित्यिक मूल्यांकन किया गया है। वे कहानियां जो विकलांगों के संदर्भ में और विकलांगों को केन्द्र में रखते हुए लिखी गई हैं; इस

अध्याय का हिस्सा हैं। विकलांगता अब एक विमर्श का रूप लेता जा रहा है। हिंदी कहानियों का लाचार समाज इस अध्याय का पहला उपभाग भिखारी जीवन का अवलोकन करता है। दक्षिणा और भिक्षाटन से भिखारी जीवन एक अलग ही विषय है। एक समय में वस्तु-विनिमय भी होता था। भिखारी दरअसल उस दयनीयता का नाम है जिसे बाज़ार ने बीच बाज़ार ला खड़ा किया है। कहते हैं कि पूंजी पूंजी को खड़ा करती है लेकिन उसका क्या जिसके पास थोड़ी भी पूंजी न हो**?** यह अध्याय ऐसे सर्वहारों के लिए है जो कहीं भी स्थान नहीं पाते। भिखारी जीवन पर ही आधारित पानू खोलिया की 'तुम्हारे बच्चे' रचना भी देखी जा सकती है। हिंदी कहानियों का अशक्त समाज इस अध्याय का पहला भाग हिंदी कहानियों में वृद्ध जीवन का अवलोकन करता है। पारिवारिक संरचना में टूटन की वजह से आए दिन वृद्धाश्रम**,** आर्थिक पक्ष व प्रेमाभाव झेलते वृद्ध हमारे इर्द-गिर्द देखे जा सकते हैं। वृद्ध चाहते क्या हैं! इनकी क्या इच्छाएं होती हैं**?** अकेलेपन की यही विवशता जीने की आरज़ू को थोड़ा और कम कर देती है। मोहन राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक' में गनी मियां अपने बेटे चिराग़ को याद करके क्रंदन कर ही तो बैठता है। तिरस्कृत जीवन संबंधी हिंदी कहानियों की भाषा और शिल्प तिरस्कार पाए हुए लोगों का जीवन मुख्यधारा से अलग होने पर उनका चित्रण भी अलग ही होगा। ज़ाहिर सी बात है कि उनके लिए भाषा का प्रयोग भी अन्य की अपेक्षा हटकर होगी। यही बात शिल्प के संदर्भ में भी कही जा सकती है। इनके लिए नए शिल्प गढ़ने होंगे। यह जानी-पहचानी बात है कि तिरस्कृत वर्गों के लिए आम समाज अलग शब्दों का प्रयोग नकारात्मक दृष्टि से करता आया है और कभी-कभार उन्हें स्वार्थवश श्रद्धेय बना देता है। ये वर्ग केवल सामान्य शब्दावली और आम नागरिक होना चाहता है। उन्हें न देवी बनना है**,** न दासी।

विषय सूची

1. हिंदी साहित्य में चुनिंदा तिरस्कृत जीवन 2. हिंदी कहानियों में तिरस्कृत जीवन : विकलांगता के विविध आयाम 3. हिंदी कहानियों का भिखारी एवं एलजीबीटी क्यू समाज 4. हिंदी कहानियों का वृद्ध एवं बाल समाज 5. तिरस्कृत जीवन संबंधी हिंदी कहानियों की भाषा। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

05. अमन सिंह

सत्ता, साहित्य और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता।

निर्देशक : प्रो. निरंजन कुमार एवं प्रो. मंजु कुमार कांबले एवं प्रो. रामनारायण पटेल

Th 28710

सारांश

बीसवीं शताब्दी का आरंभ हिंदी पत्रकारिता की दृष्टि से बेहद महत्त्वपूर्ण रहा है। स्वदेशी आंदोलन की अनुगूंज ने इस दौर के पत्रकारों को निर्भीकता और साहस की भावना से सराबोर कर दिया। सन् 1910 ई. के बाद पत्रकारिता के परिदृश्य में गणेशशंकर विद्यार्थी का आगमन होता है। गणेशशंकर विद्यार्थी ने 9 नवम्बर 1913 में `प्रताप` के माध्यम से स्वतंत्र चेतना से युक्त राष्ट्रीय पत्रकारिता का श्रीगणेश किया। `प्रताप` में उस समय के समाज, राजनीति, धर्म आदि के यथार्थ

रूप को दिखाने का प्रयास विद्यार्थी जी ने किया है। देशी रियासतों द्वारा भारतीय जन सामान्य पर किये जा रहे अत्याचार चाहे वह बिजोलिया किसान आंदोलन हो, चंपारण किसान आंदोलन हो, अवध या कानपुर का मजदूर-किसान आंदोलन हो, विद्यार्थी जी इस शोषण के विरुद्ध अपने अखबार `प्रताप` के माध्यम से शोषित-पीड़ित जनता के साथ खड़े हुए दिखाई देते हैं। विद्यार्थी जी संस्कृति को बहुत महत्त्व देते हैं। अपने लेखों द्वारा वे संस्कृति की महत्ता को स्थापित करने का प्रयास करते दिखाई देते हैं। वे भारतीय संस्कृति की समतावादी दृष्टि को विशेष महत्त्व देते हैं। गणेशशंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता का अनुशीलन करते हुए हम पाते हैं कि उसमें अंग्रेजी सत्ता के आर्थिक चरित्र, राजनीतिक चरित्र और सामाजिक चरित्र की पहचान करने का गहरा प्रयत्न दिखाई देता है। वे यह उजागर करते हैं कि अंग्रेजी सत्ता का मूल लक्ष्य भारत का आर्थिक दोहन है। राजनीतिक स्तर पर वे अंग्रेजो की `फूट डालो और राज करो` की नीति को समझते हैं। वे इसकी भी पहचान करते हैं कि अंग्रेजी सत्ता ने कभी भी सामाजिक समरसता स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया। अपनी पत्रकारिता में वे अंग्रेजी सत्ता के जनविरोधी स्वरूप को सफलतापूर्वक उजागर करने में सफल होते हैं।

विषय सूची

1. सत्ता, साहित्य और संस्कृति की अवधारणा व स्वरूप 2. भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन और हिन्दी पत्रकारिता 3. गणेश शंकर विद्यार्थी का जीवन व उनकी पत्रकारिता संबंधी मान्यताएँ 4. पराधीन भारत में किसान मजदूर आंदोलन और गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता 5. साहित्य और संस्कृति एवं गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता 6. अंग्रजी राजसत्ता और गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

06. आकाश दीप

विकास की वैकल्पिक अवधारणा, वैकल्पिक मॉडल, जनांदोलन और हिंदी उपन्यास (1990 से 2015 तक)।
निर्देशिका : प्रो. स्नेह लता नेगी
Th 28102

सारांश

हम देखते हैं हिंदी साहित्य के अंतर्गत हिंदी उपन्यास विधा में जन्म के साथ ही साम्राज्यवादी व औपनिवेशिक संस्कृति व औद्योगिक विकास का विरोध होता रहा है। प्रेमचंद पूर्व, प्रेमचंद युगीन व स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में प्रमुखता से भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों, स्थानीयता, सामाजिक समावेशिता व प्रकृति संरक्षण की चिंता मौजूद रही है। हिंदी उपन्यासों में शुरुआत से ही सरकार की जनविरोधी विकास नीतियों की आलोचना को हम देख सकते हैं, स्वतंत्रता पश्चात बड़ी विकास परियोजनों की विफलताओं का समाज के विकास पर जो दुष्परिणाम पड़ा उसको भी हिंदी उपन्यास में बखूबी चित्रित किया गया है। भारतीय समाज में बड़े पैमाने पर मची औपनिवेशिक लूट, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की होड़, विस्थापन, जनांदोलन यह सभी हिंदी उपन्यास के वर्ण्य

विषय रहे हैं। शोध में 1990 ई. के बाद आये हिंदी उपन्यासों का समाज-शास्त्रीय विवेचन किया गया है। वैश्वीकरण के कारण 21वीं सदी में केन्द्रवाद की अपेक्षा स्थानीयता को प्रमुखता मिली, एकीकृत के बजाय भिन्नता तथा अन्यथा को मूल प्रश्न के रूप में अपनाया गया, परिणामस्वरूप हाशिए पर स्थित समूह, नारी मुक्ति की आवाज़, दलित-शोषण से मुक्ति कि आवाज़, आदिवासी संवेदना से युक्त विचार तथा सांस्कृतिक संवाद से वंचित रखे जाने वाले लोग अपने वर्चस्व की लड़ाई के लिए भी आगे आए। भारत के संदर्भ में वैश्वीकरण का अर्थ है 'गुलामी का एक नया मंत्र'। एक ऐसे मंत्र का पाठ जो आर्थिक तर्क के नाम पर नवउदारवादी अंधविश्वास का बीज बो रहा है। नवउदारवाद में तीन तरह की शक्तियाँ सक्रिय रहती हैं (क) निजीकरण, (ख) उदारीकरण और (ग) भूमण्डलीकरण। यह त्रिधारा ही नवउदारवाद का आधार है। यह त्रिधारा पूंजीपति वर्ग के हितों की रक्षा करती है और आम आदमी के श्रम को चूसकर शक्तिशाली होती जाती है। भारत के सांस्कृतिक माहौल पर जो प्रभाव भूमंडलीकरण ने छोड़ा है उसे पलटना लगभग नामुमकिन हो चला है। जिसमें व्यक्ति के मस्तिष्क, समझ और मूल्यों को बदल डालने के पूरे प्रयास शामिल है। सूचना प्रोद्योगिकी और तकनीक की अभूतपूर्व प्रगति व सूचना क्रांति के प्रसार ने, कम्प्यूटर और मोबाइल के क्षेत्र में हुए क्रांतिकारी परिवर्तनों ने, विज्ञापन के मायावी जगत से प्रोत्साहित उपभोक्तावाद व विपणन-प्रबंधन की नई नई युक्तियों ने हमारा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिक परिवेश पूरी तरह बदलकर रख दिया है। हिंदी उपन्यासों में हम इन बदलावों से उत्पन्न पारंपरिक जीवन मूल्यों के क्षरण से उत्पन्न विचलन को चिन्हित कर सकते हैं। हिंदी उपन्यासों में विकास का विमर्श एक आयामी नहीं है, वह बहुआयामी है उसके केंद्र में मानव व समाज का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक व प्राकृतिक विकास का चिंतन भी शामिल है। 1990 के बाद के हिंदी उपन्यासों में हम विकास के विकल्प खोजने की व एक सतत विकास की प्रक्रिया की ओर उन्मुख होने की लड़ाई को तेज होता देख सकते हैं।

विषय सूची

विकास अर्थ एवं अवधारणा 2. जनांदोलन अर्थ और अवधारणा 3. हिंदी उपन्यास में विकास का विमर्श 4. समकालीन हिंदी उपन्यास में विकास का विमर्श (1990 से 2000 ई.) 5. समकालीन हिंदी उपन्यास में विकास का विमर्श (2000-2015ई.)। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

07. आरती

किन्नर आधारित उपन्यासों और किन्नर मनोविज्ञान का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

निर्देशक : प्रो. धंनजय कुमार दुबे एवं प्रो. सुधा सिंह

Th 28103

सारांश

किस्से-कहानियां मनुष्य जीवन का अभिन्न हिस्सा रहे हैं और बच्चों के अधिगम के लिए तो ये सबसे आसान, उपलब्ध और तेज माध्यम होते हैं क्योंकि कहानियां बच्चों को समाज के सख्त क़ायदो की तुलना में लचीला और सुखकर माहौल देती हैं। लेकिन इतिहास बताता है कि मिथक

आधारित किस्सों ने वस्तुनिष्ठ वास्तविकताओं को इस कदर नियंत्रित किया कि किन्नर समुदाय आज भी सामाजिक स्वीकार्यता और पहचान के लिए अपनी तलाश इन मिथकों और पुराकथाओं में ही कर रहा है। क्योंकि विज्ञान भी तो इन्हें कुछ वर्षों पहले तक बतौर विकृति ही परिभाषित करता रहा है। दरअसल भारतीय समाज में हमेशा से जेंडर व्यवहार की अभिव्यक्ति पर कोई ख़ास बंदिशे नहीं हुआ करती थी क्योंकि यदि हिन्दू मिथकीय पुरुष चरित्रों को ही देखा जाए तो वे सभी स्त्रियों की तरह लम्बे बाल, रोम विहीन देहवृष्टि, आभूषणों के साथ दृष्टिगत होते रहे हैं। इसके अतिरिक्त सामंतवाद में भी लगभग पुरुषों की वेशभूषा ऐसी ही हुआ करती थी, मध्यकाल के शासक भी करीब-करीब ऐसे ही दिखाई देते हैं। इसी तरह करीबन **10**वीं शताब्दी के आस-पास प्राचीन फारस की सेना के घुड़सवार सैनिकों द्वारा हील्स पहनने के भी प्रमाण मिलते हैं ताकि रकाब पर उनकी पकड़ अच्छी हो सके और वे युद्ध में बेहतर प्रदर्शन कर सके इसके बाद ये हील्स वाले जूते यूरोप पहुंच गए और वहां के आभिजात्य वर्ग के पुरुषों ने इन्हें पहनना शुरू कर दिया। लेकिन ब्रिटिश भारत में भारतीय किन्नर अपनी इसी लैंगिक अभिव्यक्ति के लिए टारगेट किये गए क्योंकि सेक्स तो ब्रिटिश समाज में भी हमेशा से था लेकिन विक्टोरियाई शुद्धतावादी मानसिकता के ब्रिटिशों के लिए लैंगिक पहचान के लिए तयशुदा यौन रुझान से भिन्न अभिव्यक्ति अपने आचरण में व्यक्त करने वाले भारतीय किन्नर और वैकल्पिक यौन अस्मिताएं दूषित यौन अल्पसंख्यक और संक्रामक बीमारियों के संवाहकों से अधिक कुछ भी नहीं थीं इसलिए क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट जैसे प्रावधानों का निर्माण कर अंग्रेजों ने भारत की करीबन छः सौ अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के साथ किन्नरों का आपराधिकरण कर डाला और किन्नरों की लैंगिक अभिव्यक्ति को प्रचलित से इतर का आचरण अथवा विचलन घोषित कर इनका अपनी तरह से उपचार भी करते रहे जबकि भारतीय पुराकालीन प्रमाणों से लेकर वर्तमान में भी यौनिक पहचान, यौन रुझान, जेंडर पहचान अथवा व्यवहार की अस्थिरता के पर्याप्त प्रमाण और स्वीकार्यता मिली है और वैसे भी जेंडर व्यवहार में बदलाव, शक्ति की गतिशीलता और सांस्कृतिक बदलावों के अंतरसंबंध को दिखलाता है जो प्रैक्टिस अथवा अभ्यास से पक्का होता है ।

विषय सूची

1. जेंडरः संघर्ष, मनोविज्ञान एवं सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान 2. हिन्दी उपन्यासों में लिंग आधारित सांस्कृतिक विमर्श और किन्नर संस्कृति 3. उपन्यासों में व्यक्त किन्नरों की नवनिर्मिति एवं सामुदायिक मजबूती 4. नैतिक संरचना, यौन मनोविज्ञान और हिन्दी उपन्यास 5. औपन्यासिक धरातल पर वैकल्पिक यौन अस्मिताओं का संघर्ष। उपसंहार। अन्य सामग्री।

08. आशुतोष

लोकनाट्य रामलीला: कथ्य और प्रदर्शन (विशेष संदर्भ: दक्षिण-पूर्वी एशियाई देश)।

निर्देशक : प्रो. विरेन्द्र भारद्धाज एवं प्रो. सुधा सिंह

Th 28704

सारांश

भारतीय पारंपरिक रंगमंच की ऐतिहासिक विरासत का वर्णन। भारत के रंगमंच के विविध तत्वों का वर्णन और मूल्यांकन। किस प्रकार रंगमंच ने समाज को एकजुट और बांधे रखा। लोकनाट्य रामलीला की उत्पत्ति की विस्तृत जानकारी। दक्षिण पूर्व एशिया में रामलीला का विस्तार किस प्रकार हुआ। दक्षिण पूर्व एशिया में रामलीला की कथानकों में साम्यता और उनका मूल्यांकन। दक्षिण पूर्व एशिया में रामलीला के प्रदर्शनों की विशेषताओं का मूल्यांकन। दक्षिण पूर्व एशिया के प्रमुख रामायण आधारित प्रदर्शनों का विश्लेषण।

विषय सूची

1. भारतीय पारंपरिक रंगमंच का उद्‌भव और विकास 2. भारतीय पारंपरिक रंगमंच के विविध आयाम 3. लोकनाट्य रामलीला : उद्‌भव और प्रदर्शन पद्धति 4. दक्षिण एशिया में रामलीला की कथावस्तुः विविध संदर्भ 5. दक्षिण-पूर्व एशिया में रामलीला की प्रदर्शन पद्धति। उपसंहार। संदर्भ-सूची। साक्षात्कार।

09. कु. ज्योति

निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में व्यक्ति परिवेश और समाज।

निर्देशिका : प्रो. स्नेह लता नेगी एवं प्रेम सिंह

Th 28705

सारांश

निर्मल वर्मा आधुनिक हिंदी साहित्य के विशिष्ट लेखक हैं। उनका अवदान कथा-साहित्य के क्षेत्र में है। उनकी कहानियाँ और उपन्यास कथा-लेखन के प्रचलित ढाँचे से अलग एक नई कहानी-कला और उपन्यास-कला की सृष्टि करते हैं. निर्मल वर्मा भाषा और शब्दों के प्रति बहुत ही सजग रचनाकार हैं। वे शब्द की अभेद दीवार को लांघकर शब्द के पहले 'मौन जगत' में प्रवेश करते हैं और वहां से प्रत्यक्ष इन्द्रिय-बोध के द्‌वारा वस्तुओं के मूल रूप को पकड़ते हैं। निर्मल वर्मा अपने कथा-साहित्य में मनुष्य के विभिन्न संदर्भो को एक साथ उठाने में सक्षम है. उनकी कथा-रचना की विशेषता है कि वह न तो पूर्णतया अन्तर्मुखी होती है और न ही पूर्णतया बहिर्मुखी, बल्कि दोनों पक्ष एक-दूसरे से टकराकर कथानुभव रचते हैं। उनके कथा-साहित्य में मानवीय संबंधों के बीच आत्मीयता और रिक्तता के सूक्ष्म स्तरों की खोज की गयी है। इस खोज में पारिवारिक टूटन, पति-पत्नी का अलगाव, पिता-पुत्र के बीच उदासीनता, प्रेमी-प्रेमिका के संबंधों में तनाव आदि का चित्रण उन्होंने अत्यंत संवेदनशीलता के साथ किया हैं। स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में जो परिवर्तन हुए उनसे सबसे अधिक प्रभावित मध्यम वर्ग हुआ। आर्थिक और सामाजिक ही नही, बल्कि मानसिक स्तर पर भी इस वर्ग को काफी समस्यों का सामना करना पड़ा है। निर्मल वर्मा ने इसी वर्ग के व्यक्ति और उसकी समस्याओं

को अपनी कहानियों और उपन्यासों का विषय बनाया है। निर्मल के यहाँ उच्चवर्गीय और निम्नवर्गीय पात्र प्राय: नहीं हैं। उनके यहाँ ज्यादातर मध्य वर्गीय पात्र हैं. उन्होंने मध्य वर्ग के व्यक्ति की वैयक्तिक समस्यों व पारिवारिक जीवन के घात-प्रतिघातों का चित्रण किया है। पारिवारिक संबंधों में घर करती जा रही उदासीनता इस वर्ग की मुख्य समस्या है. मध्य वर्ग का एक छोटा हिस्सा विदेश, विशेषकर यूरोप में जाकर बसा है। निर्मल वर्मा ने अपने कथा-साहित्य में उसका भी गहराई से चित्रण किया है। उनकी सभी कहानियों और उपन्यासों में मध्य वर्ग के जीवन का यथार्थ चित्रित हुआ है. निर्मल वर्मा के लेखन में उनका चिंतनपरक निबंध-साहित्य भी आता है। अपने निबंधों में उन्होंने आधुनिक मानव जीवन और सभ्यता के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर गंभीर चिंतन प्रस्तुत किया है। उनका चिंतन एक रचनात्मक मस्तिष्क द्वारा प्रस्तुत चिंतन का बेहतरीन नमूना है। वे कला, जीवन, मनुष्य, समाज, संस्कृति और प्रकृति से जुड़े महत्वपूर्ण और ज़रूरी मुद्दों और सवालों पर समुचित गहराई के साथ अपना विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। निर्मल वर्मा ने माना है कि उनकी कथानुभूति और चिंतन के बीच फांक नहीं है। अर्थात वे अपने चिंतन को अपने कथा-साहित्य का पूरक मानते हैं। निर्मल वर्मा के कथा-साहित्य का व्यक्ति, परिवेश और समाज के सन्दर्भ में समग्रता में विश्लेषण विशेष महत्व रखता है. क्योंकि इन तीनों पदों - व्यक्ति, परिवेश और समाज - के बारे में निर्मल वर्मा का एक सुचिंतित एवं विशिष्ट दृष्टिकोण मिलता है. व्यक्ति : आधुनिक पूंजीवादी सभ्यता के केंद्र में व्यक्ति है।

विषय सूची

1. व्यक्ति, परिवेश और समाज : सैद्धांतिक विवेचन 2. साहित्य में व्यक्ति के विभिन्न स्वरूप 3. निर्मल वर्मा के व्यक्ति, परिवेश और समाज विषयक चिंतन 4. निर्मल वर्माकी रचनाओं का शिल्प। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

10. कु शीतल

घाघ-भड्डरी, दीनदयाल गिरि और गिरिधर कविराय के काव्य में समय, समाज और संस्कृति का अध्ययन।

निर्देशिका : प्रो.सुधा सिंह

Th 28104

सारांश

प्रस्तुत शोध प्रबंध घाघ-भड्डरी, दीनदयाल गिरि और गिरिधर कविराय के काव्य में समय, समाज और संस्कृति के अध्ययन का विनम्र प्रयास है। उपर्युक्त सभी संदर्भित कवि उत्तरमध्यकालीन नीतिकवि हैं। मुगल सत्ता के पराभव के दौर में ये कवि नैतिकता से संबंधित विषयों पर कविता कर रहे थे। इनका उद्देश्य समाज को नैतिकता के उच्च मूल्यों पर प्रतिष्ठित करना था। घाघ और भड्डरी, दीनदयाल गिरि गिरिधर कविराय आदिकालीन व भक्तिकालीन कवियों की तरह कोई

पारलौकिक आदर्श समाज की रचना करने का प्रयास नहीं कर रहे थे बल्कि इसी लौकिक जगत में विभिन्न कुरीतियों से बचकर उसके नैतिक स्वरुप को पहचानने की बात करते हैं। इस शोध प्रबंध का उद्देश्य इन नीति कवियों के नैतिकता संबंधी वाणी को लोगों के सामने लाने और समाज को उनसे परिचित कराने का भी है। नीति समाज के सुचारू संचालन हेतु एक स्वस्थ मार्ग प्रशस्त करती है। सामाजिक इतिहास के प्रत्येक चरण में, वैदिक काल से लेकर समकालीन समय तक, इसकी आवश्यकता हमेशा रही है और भविष्य में, जब तक समाज का अस्तित्व रहेगा, यह तय है कि इसके नियमन के लिए नीति की आवश्यकता बनी रहेगी। प्रत्येक युग में कुछ ऐसे सात्विक महानुभाव होते हैं जिनकी रीतियों पर समाज आगे बढ़ता है। उत्तर मध्यकाल में जब सामाजिक और संस्कृतिक अवनति की खाई स्पष्ट परिलक्षित होने लगी, तब अन्य नीतिकवियों की तरह बाबा दीनदयाल गिरि, घाघ और भड्डरी और गिरिधर कविराय ने समाज को नई नैतिक दिशा प्रदान की। निस्संदेह घाघ और भड्डरी का राह अन्यत्र नीति कवियों से जुदा रहा और वो विशेषतः किसान और खेती विषयक पद ही कहे फिर भी इस शोध प्रबंध में लिए गये कवियों के नीति काव्य आज के समाज में भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने ये 18-19वीं सदी में थे। अतः प्रस्तुत शोध प्रबंध नीतिकाव्य के क्षेत्र में घाघ-भड्डरी, दीनदयाल गिरि और गिरिधर कविराय के योगदान को जानने-समझने का एक विनम्र प्रयास है।

विषय सूची

1. उत्तर मुगलकालीन राजनीतिक–सामाजिक इजिहास और साहित्य में स्थितियों का साक्ष्य 2. हिन्दी नीतिकता परंपरा और घाघ-भड्डरी, दीनदयाल गिरी और गिरीधर कविराय 3. घाघ-भड्डारी, दीनदयाल गिरी और गिरीधर कविराय के काव्य में वर्णित लोक और सामाजिक चेतना 4. घाघ-भड्डारी, दीनदयाल गिरी और गिरीधर कविराय के काव्य में समय, समाज और संस्कृति का अध्ययन 5. घाघ-भड्डारी, दीनदयाल गिरी और गिरीधर कविराय के काव्य का भाषिक मूल्यांकन। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची। अनुक्रमणिका।

11. कुलदीप

केदारनाथ सिंह के काव्य में निहित पर्यावरणीय संवेदना।

निर्देशिका : प्रो. रेणु बाला

Th 28105

सारांश

प्रस्तुत शोध-प्रबंध केदारनाथ सिंह की कविता को पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में देखने पर केंद्रित हैं। केदारनाथ सिंह की कविता और उनकी भाषा ऐसे परिदृश्य का निर्माण करती हैं, जहाँ पर्यावरण विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। उनकी चेतना में पर्यावरण जिस कदर समाया हुआ है, वह अनायास ही कविता के विभिन्न पात्रों का सहारा लेकर अभिव्यक्ति के लिए व्याकुल हो उठता है। चींटी की रुलाई सुनने वाले केदार जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, कीचड़, धूल, और दूब के माध्यम से सामान्य-जन की

समस्या को उठाते हुए उन्हें पर्यावरणीय संदर्भ में परिभाषित करते हैं। प्रस्तुत शोध-प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक अध्याय को विषय की स्पष्टता हेतु विभिन्न इकाइयों में विभाजित किया गया है। अध्याय के वर्गीकरण में विषय की गहनता एवं स्वरूप की स्पष्टता को आधार बना गया है। प्रथम एवं द्‌वितीय अध्याय मूलतः पर्यावरण संबंधी अवधारणा, स्वरूप एवं महत्त्व तथा उसे संरक्षित करने की मनुष्य द्‌वारा की गयी कोशिशों को स्पष्ट करते हैं। अग्रिम तीन अध्याय केदारनाथ सिंह की कविता पर केंद्रित हैं, जहाँ कविताओं में चित्रित पर्यावरण और उसके निर्माण की प्रक्रिया में सम्मिलित आवश्यक तत्त्व तथा उसके स्वरूप एवं महत्त्व को स्पष्ट किया गया है। आधुनिक समय में क्षरित होते पर्यावरण के प्रति केदारनाथ सिंह की कविता सचेत है और उसका अभिव्यक्तिकरण प्रमुखता से करती है। मनुष्य जहाँ लाभ-लोभवश प्रकृति का अंधाधुंध दोहन कर रहा है, जिससे प्राकृतिक संसाधन नष्ट हो रहे हैं। केदारनाथ सिंह जहाँ 'विद्रोह' नामक कविता में मनुष्य से जबाव माँगती प्रकृति को चित्रित करते हैं तो सूर्य के ताप को अगली सदी का ताप कहकर, पृथ्वी के बढ़ रहे तापमान के प्रति दृष्टि ले जाते हैं। केंचुए का दिखाना उन्हें अप्रितम लगता है तो हरे बाँस के काटे जाने से बाँसुरियों के बेसुरे होने के लोक-विश्वास को रचते हैं। केदारनाथ सिंह की कविता के विभिन्न पक्ष शोध विषय के केंद्र में रहे हैं।

विषय सूची

1. पर्यावरण : अवधारणा एवं स्वरूप 2. पर्यावरण : चिंतन एवं संवेदना 3. केदारनाथ सिंह का काव्य और पर्यावरणीय संवेदना 4. केदारनाथ सिंह के काव्य में पर्यावरणीय चेतना 5. केदारनाथ सिंह का काव्य शिल्प और पर्यावरण। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

12. केशव

दिनकर का काव्य : पौराणिकता में निहित समसामयिक संदर्भ।

निर्देशक : प्रो. प्रदीप कुमार

Th 28106

सारांश

शोध के प्रथम अध्याय में "पौराणिकता" और "समसामयिकता" के अर्थ, स्वरूप और महत्त्व का विश्लेषण किया गया है। पौराणिकता का अर्थ उन प्राचीन आख्यानों, कथाओं और पात्रों से जुड़ा है, जो भारतीय समाज की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में आज भी प्रासंगिक हैं। भारतीय साहित्य में पौराणिकता का स्वरूप महाकाव्यों, वेदों, पुराणों और धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से प्रकट होता है। पौराणिकता भारतीय समाज के नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की आधारशिला है। समसामयिकता का अर्थ समाज की वर्तमान परिस्थितियों, समस्याओं और संघर्षों से है। दिनकर ने अपने काव्य में स्वतंत्रता संग्राम, सामाजिक विषमता, आर्थिक शोषण और जातिगत अन्याय जैसे समकालीन मुद्‌दों को उठाया है। इस अध्याय में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और साहित्यिक परिस्थितियों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। स्वतंत्रता संग्राम, सामाजिक जागरूकता, धार्मिक विविधता और आर्थिक असमानता के संदर्भ में दिनकर के काव्य का गहराई

से अध्ययन किया गया है। शोध के द्वितीय अध्याय में दिनकर के जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व का विस्तृत विवरण दिया गया है। दिनकर का व्यक्तित्व ओजस्वी, विद्रोही और स्वाभिमानी था। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से सामाजिक विषमता, जातिगत भेदभाव और आर्थिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई। दिनकर के कृतित्व में उनकी पद्यात्मक और गद्यात्मक रचनाएँ प्रमुख स्थान रखती हैं। `रश्मिरथी`, `कुरुक्षेत्र`, `परशुराम की प्रतीक्षा` और `उर्वशी` उनकी प्रमुख पद्यात्मक रचनाएँ हैं, जबकि `संस्कृति के चार अध्याय` और `भारत: एक खोज` उनकी प्रमुख गद्यात्मक कृतियाँ हैं। दिनकर की रचनाएँ भारतीय समाज, संस्कृति और राष्ट्रवाद की सजीव अभिव्यक्ति हैं। शोध के तृतीय अध्याय में दिनकर के काव्य की मूल संवेदना और समसामयिक चिंतन का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। दिनकर के काव्य में राष्ट्रवाद, सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक चेतना और समकालीन समस्याओं का प्रभावशाली चित्रण मिलता है। दिनकर ने अपने काव्य में पौराणिक कथाओं और पात्रों के माध्यम से समसामयिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है। चतुर्थ अध्याय में दिनकर के काव्य में मिथकीय चेतना का अध्ययन किया गया है। मिथक भारतीय संस्कृति के आधारभूत स्तंभ हैं। दिनकर ने सृष्टि संबंधी मिथक, देववर्गीय मिथक, प्राणिवर्गीय मिथक, प्रकृतिपरक मिथक और अस्तित्व वर्गीय मिथक का अपने काव्य में प्रयोग किया है। दिनकर ने पौराणिक मिथकों को समसामयिक संदर्भों से जोड़कर समाज की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है। पंचम अध्याय में दिनकर की काव्यभाषा का विश्लेषण किया गया है। दिनकर के काव्य में तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्दों का सुंदर समन्वय मिलता है। उनकी काव्यभाषा में अलंकार, शब्दशक्ति, बिंब विधान और छंद विधान का प्रभावशाली प्रयोग हुआ है। दिनकर ने अपने काव्य में मात्रिक और वर्णिक छंदों का उपयोग करके कविता को लयात्मक और संगीतमय बनाया है। उन्होंने अपने काव्य में पौराणिकता और समसामयिकता के तत्वों का अद्भुत समन्वय किया है। दिनकर के काव्य में राष्ट्रवाद, सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक चेतना का स्वर अत्यंत प्रबल है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से भारतीय समाज को नई दिशा और प्रेरणा दी है। उनका काव्य भारतीय साहित्य की अमर धरोहर है। दिनकर का काव्य भारतीय समाज के नैतिक और सांस्कृतिक उत्थान का प्रतीक है। उनके काव्य में न केवल अतीत के गौरव की झलक मिलती है, बल्कि वर्तमान समाज की समस्याओं का समाधान भी निहित है।

विषय सूची

पौराणिकता तथा समसामयिकता का अर्थ, अभिप्राय और तत्कालीन परिस्थितियाँ 2. दिनकर के काव्य में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना 3. दिनकर के काव्य की मूल संवेदना एवं समसामयिक चिंतन 4. दिनकर के काव्य में मिथकीय चेतना 5. दिनकर की काव्यभाषा। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

13. काना राम

गंग कवि के काव्य में मानव मूल्य।

निर्देशक : डॉ. शिव कुमार
Th 28107

सारांश

गंग कवि के काव्य में मानव मूल्य परिचय हिंदी साहित्य में "गंग" कवि का महत्वपूर्ण स्थान है। उनके काव्य में समाज, संस्कृति, नैतिकता और मानवीय मूल्यों की गहरी अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। इस शोध का उद्देश्य गंग कवि के काव्य में निहित मानवीय मूल्यों का विश्लेषण करना है, जिसमें वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक और मिश्रित मानव मूल्यों की प्रमुखता से पहचान की जाती है। शोध उद्देश्य/ प्रश्न "गंग" कवि के काव्य में मानव मूल्य विषय पर किए गए इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं: **1.** गंग कवि के जीवन का अध्ययन **2.** गंग कवि के काव्य का अध्ययन **3.** मानवीय मूल्यों की पहचान **4.** सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव **5.** संदेश और प्रासंगिकता **6.** अन्य समकालीन कवियों से तुलना **7.** भाषा एवं काव्य सौंदर्य **8.** शिक्षा और नैतिकता में योगदान- यह शोध इन उद्देश्यों के माध्यम से गंग कवि के साहित्यिक योगदान को विस्तार से समझने और उसमें निहित मानव मूल्यों को उजागर करने का प्रयास करेगा। शोध पद्धति गंग कवि के काव्य में मानव मूल्य विषय पर किए गए इस शोध में निम्नलिखित शोध पद्धतियों का उपयोग किया गया है: **1.** गुणात्मक (**Qualitative)** शोध पद्धति **2.** वर्णनात्मक (**Descriptive)** पद्धति- **3.** विश्लेषणात्मक (**Analytical)** पद्धति - **4.** तुलनात्मक (**Comparative)** अध्ययन **5.** प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों का अध्ययन - **o** प्राथमिक स्रोत - गंग कवि की मूल रचनाओं का गहन अध्ययन किया गया है। **o** द्वितीयक स्रोत - विभिन्न साहित्यिक आलोचनाओं, शोध-पत्रों, पुस्तकों और लेखों का अध्ययन किया गया है ताकि उनके काव्य में निहित मानवीय मूल्यों की व्यापक समझ विकसित की जा सके। **6.** ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य का अध्ययन भविष्य में शोध भविष्य में इस विषय पर और अधिक विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है, जिसमें गंग कवि के काव्य की तुलना अन्य हिंदी साहित्य के महान कवियों से की जा सकती है, तथा उनके काव्य में व्यक्त किए गए दर्शन का और गहराई से विश्लेषण किया जा सकता है। निष्कर्ष और योगदान इस शोध का मुख्य निष्कर्ष यह है कि गंग कवि का साहित्य मानवीय मूल्यों, समाज सुधार और नैतिक शिक्षा का अद्वितीय उदाहरण है। यह शोध साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में नया योगदान प्रस्तुत करता है और भविष्य में गंग कवि के काव्य पर और अधिक शोध की आवश्यकता को स्पष्ट करता है।

विषय सूची

1. मानव मूल्यों की अवधारणाए स्वरूप एवं वैचारिक आधार 2. मानव मूल्य परंपरा और विकास 3. गंग कवि का युगीन परिवेश 4. गंग कवि का जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व 5. गंग कवि का काव्य संसार 6. गंग कवि के काव्य में प्रतिपादित मानव मूल्यों के विविध आयाम 7. गंग कवि के मानव मूल्यपरक कावय में अभिव्यंजक भाषा का स्वरूप निष्कर्ष। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

14. कुमार प्रलाहद

हिंदी साहित्य के विकास में ज्ञानरंजन संपादित `पहल` पत्रिका का योगदान।

निर्देशिका : प्रो. माला मिश्रा

Th 28706

सारांश

यह शोधकार्य हिंदी की प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका 'पहल' (1973 से प्रकाशित, संपादक - ज्ञानरंजन) के बहुआयामी योगदान का अध्ययन प्रस्तुत करता है। सातवें दशक के उत्तरार्ध में जब साहित्य और समाज में वैचारिक उथल-पुथल का दौर था, उस समय 'पहल' ने साहित्यिक पत्रकारिता को नए सरोकार, तेवर और दृष्टि प्रदान की। यह केवल एक पत्रिका नहीं रही, बल्कि हिंदी साहित्य में वैचारिक हस्तक्षेप और सांस्कृतिक आंदोलन का रूप धारण करती रही। प्रथम अध्याय में ज्ञानरंजन के साहित्यिक व्यक्तित्व, साहित्यिक पत्रकारिता की परंपरा और तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिवेश की पृष्ठभूमि में 'पहल' की स्थापना और भूमिका का विवेचन किया गया है। द्वितीय अध्याय में कविता के क्षेत्र में 'पहल' की उपलब्धियों का अध्ययन किया गया है, जिसमें हिंदी कविता के साथ-साथ भारतीय अन्य भाषाओं और विदेशी कविताओं की प्रस्तुति के जरिए उसकी वैश्विक दृष्टि को रेखांकित किया गया है। तृतीय अध्याय में कहानी विधा के विकास पर 'पहल' के योगदान का विश्लेषण किया गया है। इसमें हिंदी कहानियों के साथ-साथ विदेशी और उर्दू कहानियों के अनुवाद एवं प्रकाशन से पत्रिका की बहुभाषिकता और वैचारिक खुलापन स्पष्ट होता है। चतुर्थ अध्याय में आलोचना के क्षेत्र में 'पहल' की भूमिका पर विचार किया गया है। प्रमुख बहसों, कथा-काव्य संबंधी विमर्शों और संपादकीय दृष्टि ने हिंदी आलोचना को नई दिशा दी। पंचम अध्याय में संस्मरण, डायरी, पत्र, साक्षात्कार और परिचर्चा जैसी अन्य गद्य विधाओं में 'पहल' के योगदान को विश्लेषित किया गया है। इस प्रकार यह शोधपत्र सिद्ध करता है कि 'पहल' ने हिंदी साहित्य को समकालीन चेतना, जनपक्षधरता और अंतरराष्ट्रीय दृष्टि प्रदान करते हुए उसे एक नए वैचारिक क्षितिज तक पहुँचाया।

विषय सूची

1. ज्ञानरंजन और 'पहल' पत्रिका - एक परिचयात्मक विमर्श 2. काव्यात्मक साहित्य के विकास में 'पहल' का योगदान 3. कहानी के विकास में 'पहल' का योगदान 4. हिन्दी आलोचना और 'पहल' की भूमिका 5. हिन्दी के उन्य गद्य विधाओं के विकास में 'पहल' का योगदान। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ।

15. गोयल (आशिमा)

हिन्दी उपन्यासों में किन्नर समुदायों का समाजशास्त्रीय अध्ययन'' (यमदीप, किन्नर कथा, मैं भी औरत हूँ, तीसरी ताली, पोस्ट बॉक्स नं. 203, नाला सोपारा उपन्यासों के विशेष संदर्भ में) ।

निर्देशक : प्रो. बन्ना राम मीना

Th 28798

सारांश

भारतीय समाज सदियों से लिंग, जाति और वर्ग के आधार पर निर्मित एक जटिल संरचना रहा है। इस संरचना में किन्नर समुदाय- जिसे हिजड़ा, किन्नर, पवैया, खोजा, छक्का, ट्रांसजेंडर, तृतीय लिंग कहा जाता है। हमेशा से उपेक्षा और बहिष्कार का शिकार रहा है। उन्हें सामाजिक जीवन के केन्द्र में हटाकर केवल नेग माँगने, ताली बजाने और आशीर्वाद देने जैसी सीमित भूमिकाओं तक बाँध दिया गया। आधुनिक युग में भी शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और राजनीतिक प्रतिनिधित्व से वंचित यह समुदाय सामाजिक बहिष्करण की पीड़ा झेलता रहा है। परंतु साहित्य विशेषकर उपन्यास ने इस मौन और दबे हुए समुदाय की आवाज़ को सामने लाने का साहस किया है। हिंदी उपन्यासों में किन्नर जीवन का चित्रण केवल करुणा का प्रसंग नहीं, बल्कि सामाजिक संवेदनहीनता और पूर्वाग्रहों की गहन पड़ताल है। प्रस्तुत शोध इसी उद्देश्य से किया गया है- किन्नर समुदाय के संघर्ष, जीवनानुभव और उनकी सामाजिक स्थिति का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना।

विषय सूची

1. हिन्दी उपन्यास के उदय की पृष्ठभूमि और कारण 2. समाजशास्त्रीय अध्ययन पद्धति 3. किन्नर समुदाय और समाज व्यवस्था 4. लैंगिक विमर्श : अर्थ, आशय, अवधारणा 5. समकालीन विमर्श और किन्नर समुदाय 6. विशिष्ट उपन्यासों का विश्लेषण। उपसंहार। परिशिष्ट। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

16. जैन (तनुज)

विद्यानिवास मिश्र के निबंधों का सांस्कृतिक अनुशीलन।

निर्देशक : प्रो. बाली सिंह

Th 28108

सारांश

भारत और भारतीयता पर चर्चा समकालीन सांस्कृतिक विमर्श में एक चुनौती भरा काम हो गया है। यह चुनौती तब और भी बढ़ जाती है जब कोई भारतीय भारत के बारे में बात करे, वह भी जिसे घोषित भारतवादी करार दिया गया हो। पर भारत को भारत के नजरिए से अर्थात यहाँ की व्यापक सांस्कृतिक दृष्टि से देखने की शुरुआत तो करनी ही पड़ेगी। इस कार्य के लिए आचार्य विद्यानिवास मिश्र का चिंतन एक सार्थक प्रस्थानबिंदु के रूप में उपस्थित होता है। कुल मिलाकर विद्यानिवास मिश्र के निबंध पाठकों को भारत के स्वरूप को निकटता से जानने और समझने में सहायक होते हैं और इस दिशा में उनकी रुचि का विस्तार करते हैं। 'हिंदी निबंध साहित्य का इतिहास' की परंपरा में डॉ. विद्यानिवास मिश्र के वैशिष्ट्य को रेखांकित किया गया है। यहाँ विषयवस्तु के स्तर पर, शिल्प-विधान के स्तर पर और विद्यानिवास मिश्र का ऐतिहासिक अवदान उप-शीर्षकों के माध्यम से मिश्र जी की विशिष्टता को दर्शाया गया है। विद्यानिवास मिश्र के रचना-संसार का बहुआयामी और विस्तृत फ़लक पर परिचय यहाँ दर्शाया गया है। यहाँ पर मिश्र जी के अभी तक उपलब्ध लगभग संपूर्ण रचना-संसार को दिखाने का प्रयास किया गया है। मिश्र

जी का साहित्य केवल विश्वविद्यालयी परम्परा में पढ़े हुए व्यक्तियों को ही संस्कारित नहीं करता बल्कि उनके साहित्य ने उन लोगों को भी संस्कारवान बनाया है जिन्हें कभी विश्वविद्यालयी या शास्त्रीय शिक्षा प्राप्त नहीं हुई। बल्कि बिना पढ़े-लिखे व्यक्ति भी उनसे प्रशिक्षित हुए हैं। मसलन कोई बिजनेसमैन हो, दुकानदार हो, पाठक हो या रिक्शा चलाने वाला हो। मिश्र जी के साहित्य ने अनेक लोगों का जीवन बचाया, बदला और उनके जीवन को एक नई सकारात्मक दिशा प्रदान की। हमारे सामने गौरीशंकर जी उनमें से एक ज्वलंत उदाहरण हैं। यह प्रयोग हिंदी के शोध-प्रबंध की परंपरा में संभवतः प्रथम और मौलिक प्रयोग है।

विषय सूची

1. निबन्ध : अवधारणा और स्वरूप 2. संस्कृति : अवधारणा और स्वरूप 3. हिन्दी निबन्ध परंपरा : संस्कृति के विशेष संदर्भ में 4. विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में सांस्कृतिक-चेतना 5. ललित निबंध और विद्यानिवास मिश्र। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची। परिशिष्टियाँ।

17. त्रिपाठी (राघवेन्द्र नाथ)

लोकसाहित्य में स्त्री वेदना और चेतना (अवधी लोकगीतों के विशेष संदर्भ में)।

निर्देशक : प्रो. ललित मोहन

Th 28109

सारांश

अवधी लोकगीतों में स्त्री की वेदना और क्षोभ का वर्णन न केवल उसकी व्यक्तिगत पीड़ा को उजागर करता है, बल्कि समाज की सोच और मान्यताओं पर भी सवाल उठाता है। ये गीत नारी के संघर्ष, उसकी सहनशक्ति और उसके अधिकारों के प्रति जागरूकता का प्रतीक हैं। ऐसे गीत स्त्री के लिए एक आवाज़ बनकर उभरते हैं, जो सामाजिक बदलाव की दिशा में एक कदम आगे बढ़ाते हैं। अवधी लोकगीतों में स्त्री की वेदना से क्षोभ की ओर जाती यात्रा एक गहन सामाजिक, मानसिक और भावनात्मक प्रक्रिया है। ये गीत न केवल उसके दुखों को उजागर करते हैं, बल्कि उसके साहस, संघर्ष और बदलाव की चाहत को भी व्यक्त करते हैं। लोकगीत नारी की स्थिति, उसकी आवाज़ और समाज में परिवर्तन की आवश्यकता का प्रतीक बनते हैं। अवधी लोकगीतों में स्त्री की वेदना से क्षोभ की ओर जाती यात्रा एक महत्वपूर्ण सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। इस प्रकार, अवधी लोकगीत नारी की स्थिति, उसकी आवाज़ और परिवर्तन की आवश्यकता का सशक्त माध्यम हैं। स्त्री आन्दोलन के बाद से लेकर वर्तमान समय तक, चेतना का जो विकास नगरीय क्षेत्रों में परिलक्षित होता है वह ग्रामीण अंचल में सापेक्षतः कम है। लोकगीतों के माध्यम से यह बात सामने आती है। लोकसाहित्य अपनी निरंतरता में सामाजिक परिवर्तनों को संचित किए हुए आगे बढ़ते हैं। लोकसाहित्य की इस विशेषता के कारण हमें स्त्री विषयक मुद्दों के निरंतरता की पहचान होती है। इस प्रकार निश्चय ही कहा जा सकता है कि लोकगीतों में निहित स्त्री प्रश्न तथा स्त्री विषयक समस्याओं के निरंतरता की पहचान अवधी लोकगीतों में निहित स्त्री

चेतना और उसकी प्रासंगिकता को रेखांकित करते हैं। यहाँ वैचारिक स्तर और आम चलन में सामाजिक चेतना संबंधी प्रश्नों को संबोधित करना अभी शेष है।

विषय सूची

1. लोक साहित्य वेदना और चेतना 2. अवधी लोक साहित्यए भारतीय समाज और स्त्री 3. अवधी लोक गीत में स्त्री वेदना की अभिव्यक्ति 4. अवधी लोक गीत में क्षोभ और स्त्री 5. अवधी लोक गीत में अभिव्यक्त स्त्री वेदना और चेतना की प्रासंगिकता। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

18. तिवारी (त्रिनेत्र)

हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त पारिस्थितिक दृष्टि (सन् 1990 से अब तक)।

निर्देशिका : प्रो. अल्पना मिश्रा

Th 28110

सारांश

इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट हुआ है कि हिंदी उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना, संसाधनों के दोहन, विस्थापन, शहरीकरण एवं औद्योगीकरण के प्रभावों को गंभीरता से प्रस्तुत किया गया है। पारिस्थितिक दृष्टि केवल पर्यावरणीय संकट को चित्रित करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संदर्भों को भी उजागर करती है। यह अध्ययन हिंदी उपन्यासों में पर्यावरणीय दृष्टिकोण को अधिक गहराई से समझने और उनके समाधान की दिशा में नए विमर्श को जन्म देने का प्रयास करता है। साथ ही, यह भी इंगित करता है कि किस प्रकार साहित्य समाज में परिवर्तन लाने की क्षमता रखता है और हिंदी उपन्यासों में यह चेतना किस प्रकार विकसित हुई है।

विषय सूची

1. हिन्दी उपन्यासों का विकास प्रकृति, पर्यावरण और पारिस्थितिकीय अवधारणा 2. हिन्दी उपन्यसों में भूमंडलीकरण का प्रभाव और पारिस्थितिकीय संदर्भ 3. हिन्दी उपन्यासों में वर्णित पारिस्थितिकीय समस्या 4. हिन्दी उपन्यास, पारिस्थितिकीय, इको फेमिनिज़्म। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

19. तिवारी (प्राची)

प्रारम्भिक स्त्री कथा लेखन का समाजशास्त्रीय अध्ययन (सन् 1900 से 1950 तक)।

निर्देशिका : प्रो. अल्पना मिश्रा

Th 28111

सारांश

प्रारंभिक स्त्री कथा लेखन हिंदी साहित्य में स्त्री चेतना के विकास का एक महत्वपूर्ण चरण था, जिसने साहित्य और समाज के अंतर्संबंधों को एक नई दृष्टि प्रदान की। यह लेखन न केवल स्त्रियों की पीड़ा, संघर्ष और आकांक्षाओं को साहित्यिक अभिव्यक्ति देता है, बल्कि सामाजिक

परिवर्तन की दिशा में एक सशक्त हस्तक्षेप भी करता है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि प्रारंभिक स्त्री कथाएँ केवल व्यक्तिगत या पारिवारिक जीवन तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे स्त्री-स्वतंत्रता, शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता और लैंगिक समानता जैसे व्यापक सामाजिक प्रश्नों से गहराई से जुड़ी थीं। समकालीन संदर्भ में, प्रारंभिक स्त्री कथा लेखन की प्रासंगिकता और अधिक स्पष्ट हो जाती है। स्त्री शिक्षा, विवाह संस्था में स्त्रियों की स्थिति, संपत्ति पर अधिकार, आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय जैसे मुद्दे आज भी समाज में बहस और संघर्ष के विषय बने हुए हैं। इन विषयों को प्रारंभिक लेखिकाओं ने जिस सशक्त भाषा और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया, उसने हिंदी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श को आधार प्रदान किया। आज जब समकालीन स्त्री लेखन अपने स्वतंत्र स्वर और व्यापक विमर्श के साथ साहित्यिक जगत में स्थापित हो चुका है, तो यह कहना उचित होगा कि इस लेखन की बुनियाद प्रारंभिक स्त्री कथाकारों द्वारा ही रखी गई थी। यह अध्ययन स्त्री-जीवन की जटिलताओं, उसकी संघर्ष यात्रा, और सामाजिक संरचना में हो रहे परिवर्तनों को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनेगा। यह लेखन आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना अपने समय में था, और आने वाले समय में भी यह स्त्री सशक्तिकरण की दिशा में प्रेरणा स्रोत बना रहेगा। मैंने यह प्रयास किया है कि यह शोध हिन्दी कथा साहित्य को अधिक संतुलित, व्यापक और समृद्ध करने की दिशा में सार्थक योगदान देगा।

विषय सूची

1. प्रारम्भिक कथा साहित्य और समाजशास्त्रीय अध्ययन 2. प्रारम्भिक कथा साहित्य में स्त्री की उपस्थिति 3. प्रारंभिकस्त्री कथा लेखन और स्त्री दृष्टि 4. प्रारम्भिक स्त्री कथा लेखन की प्रासंगिकता । उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

20. तिवारी (रवि)

रीतिकालीन नीतिकाव्य के स्रोत।

निर्देशिका : प्रो. संध्या वात्स्यायन

Th 28795

सारांश

प्रथम अध्याय: रीतिकाल: परिस्थितियाँ, नामकरण, प्रवर्तक और कवि इस अध्याय में मैंने रीतिकाल की परिस्थितियों का शोधपरक अध्ययन किया है। परिस्थितियों के अध्ययन के लिए साहित्य तथा इतिहास के महत्वपूर्ण पुस्तकों का अध्ययन एवं उनका विश्लेषण सार्थक विधि से किया गया है। रीतिकाल के नामकरण को भी सार्थकता के साथ विवेचित एवं विश्लेषित किया गया है। इसके उपरांत रीतिकाल के प्रवर्तक संबंधी विवाद की विवेचना करते हुए इसके प्रवर्तक को केंद्रित किया गया है। अंत में रीतिकाल के कवियों का सार्थक विधि से वर्गीकरण करते हुए निष्कर्ष प्रतिपादित किया गया है। द्वितीय अध्याय: नीतिः अर्थ, परिभाषा, परंपरा महत्त्व और प्रकार इस अध्ययन में मैंने नीति शब्द का अर्थ एवं उसकी परिभाषा की विवेचना प्रस्तुत की है। इसके पश्चात् वैदिक साहित्य, लौकिक संस्कृत

साहित्य, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य में उपलब्ध नीतिगत प्रसंगों का अध्ययन करते हुए हिंदी साहित्य के नीतिगत प्रसंगों का अध्ययन किया गया हैं जिससे नीति की विराट का सार्थक विधि से अध्ययन हो सकें। इसके पश्चात् नीति काव्य के महत्व एवं उसके उद्देश्य को प्रतिपादित किया गया है। अंत में नीति के समस्त के प्रकारों की उदाहरण सहित विवेचना एवं विश्लेषण करके निष्कर्ष प्रतिपादित किया गया है। तृतीय अध्याय: रीतिकालीन नीति कवियों का परिचय एवं कृतित्व इस अध्याय में मैंने रीतिकाल के दस प्रमुख नीति कवियों का जीवन परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व की शोधपरक विवेचना तदुपरांत विश्लेषण किया है। दस रीतिकालीन नीति कवियों के पश्चात अंत में कुछ अन्य रीतिकालीन नीति कवियों की भी विवेचना प्रस्तुत की है जिनके ठोस आधार उपलब्ध न होने के कारण ही उन्हें रीतिकालीन नीति कवियों की श्रेणी में नहीं रखा है अंत में निष्कर्ष दिया गया है। चतुर्थ अध्याय: रीतिकालीन नीतिकाव्य के स्रोत इस अध्याय में मैंने स्रोत का अर्थ बताते हुए रीतिकालीन नीति काव्य में उपलब्ध प्रत्यक्ष स्रोत तथा अप्रत्यक्ष स्रोत का भी विवेचन एवं विश्लेषण किया। यह अध्याय मेरे शोध प्रबंध का मूल अध्याय है। स्रोतों को वर्गीकृत करने के उपरांत रीतिकालीन नीति काव्य के बोध सौंदर्य तथा कला सौंदर्य पर स्रोतों के प्रभाव का विस्तार पूर्ण विवेचन एवं विश्लेषण किया है। अंत में निष्कर्ष रखा गया है। पंचम अध्याय: रीतिकालीन नीति कवियों की काव्यभाषा इस अध्याय में मैंने काव्य भाषा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए रीतिकालीन नीति काव्य की भाषा-सौष्ठव का अध्ययन किया गया है। काव्य भाषा के तत्वों को आधार बनाकर ही रीतिकालीन नीति कवियों की काव्यभाषा का अध्ययन किया गया है और अंत में निष्कर्ष भी रखा गया है। उपसंहार उपसंहार में संपूर्ण शोध का सार आलोचनात्मक दृष्टिकोण से प्रतिपादित किया गया है। प्रस्तुत शोध की महत्ता हिंदी जगत में किन्हीं अर्थों में हो सके, यही प्रस्तुत शोध का प्रमुख एवं प्रबल उद्देश्य है।

विषय सूची

1. रीतिकाल-परिस्थितियाँ, नामकरण, प्रवर्तक और कवि 2. नीति-अर्थ, अवधारणा, परंपरा, महत्त्व और प्रकार 3. रीतिकालीन नीति कवियों का जीवनवृत, व्यक्तित्व एवं कृतित्व 4. रीतिकालीन नीति काव्य के स्रोत 5. रीतिकालीन नीति कवियों की काव्यभाषा। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

21. द्विवेदी (शशि कुमार)

लोकनाट्य रूप `रासलीला` का पाठ एवं प्रदर्शन पद्धति (असमिया `रास` के विशेष संदर्भ में)।

निर्देशक : प्रो. चंदन कुमार

Th 28112

सारांश

भारतीय संस्कृतिक रचनाशीलता को समझने के लिए कई आधार सूत्र हमारे सामने विद्यमान है रासलीला उनमें से दृश्यमान रचनात्मकता का एक रूप कहा जा सकता है। इसके माध्यम से हम न केवल समाज के धार्मिक क्रियाकलापों का ही अध्ययन करते हैं बल्कि इसके साथ उनके द्वारा प्रदर्शित की जाने वाली विविध शैक्षणिक एवं सामाजिक गतिविधियों की भी समीक्षा इसी के

माध्यम से निर्धारित करने का कार्य करते हैं। यही कारण है कि रासलीला केवल से ब्रजभूमि का ही नहीं बल्कि सुदूर पश्चिम के प्रांत में विद्यमान द्वारिका तक से अपना सांस्कृतिक संबंध स्थापित करती है। इसके साथ ही हम भारत में लोकरंग के प्रदर्शन पर रूपों की भी समीक्षा रासलीला के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। यही कारण है कि रासलीला का अध्ययन हमें भारतीय समाज की लोकनाट्यरचना का प्रचलित रूप परिभाषित करने में सहायक सिद्ध होता है। प्राचीन काल से ही हम जिस प्रकार से लोकनाट्य के द्वारा समाज का शिक्षण करते आ रहे हैं और यह देखते आ रहे हैं कि भारत में 8 नवजागरण की चेतनाओं का विस्तार रंगमंच का आधार ग्रहण करके किस प्रकार से समाज में अपनी वैचारिक भूमिका निर्माण करता है, यह ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रियाओं से सर्वसिद्ध हो चुका है। इसी प्रकार से मध्यकालीन समय में भक्ति आंदोलन का प्रचार प्रसार सर्वसाधारण जनता में रंगमंच और रासलीला के माध्यम से ही संभावित हो सका था, श्रीमंत शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव इस तथ्य को गहरे अर्थों में समझते थे और इसी कारण उन्होंने भक्ति के प्रचार प्रसार के लिए रासलीला का आधार ग्रहण किया। असम की रासलीला जिस प्रकार से विविध प्रकार के लोकधर्मी जीवनमूल्यों का प्रोत्साहन करती रही है वह वर्तमान समय की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक रचनाधर्मिता के लिए भी अत्यंत आवश्यक कहा जा सकता है। क्योंकि वर्तमान समय की रचनात्मक जिस प्रकार से विविध प्रकार के वैचारिक आग्रहो एवं राजनीतिक मान्यताओं को रचनात्मकता के माध्यम से स्थापित करने का कार्य कर रही है वह किसी भी प्रकार से साहित्य को एक सुचिंतित भविष्य दृष्टि प्रदान नहीं 12 कर सकता इसके लिए आवश्यक है कि हम रचनात्मकता को परंपराधर्मिता एवं आधुनिक बोध के सम्यक साहित्यिक मानदंडों के आधार पर निर्धारित करें। यह प्रक्रिया असम की रासलीला पूरी तरह निर्वहित करने में सफल है क्योंकि इसमें एक और लोकनाट्य की परंपरा का प्रवाह भी देखने को मिलता है तो वही आधुनिक अभिनय विधान को भी अंगीकृत करने में कोई संकोच नहीं किया गया है। यहां पर रंगमंच अपने मूल रूप का परित्याग न करते हुए भी आधुनिक समय में आवश्यकता के अनुसार प्रभाव को बढ़ाने वाले अभिनयात्मक उपकरणों का प्रयोग करने में सफल सिद्ध हो रहा है जो कि वर्तमान समय में समग्र भारतवर्ष के रंगमंच को भी एक नई दिशा दृष्टि प्रदान करने में सफल हो सकता है।

विषय सूची

1. लोकनाट्य परम्परा और स्वरूप 2. रासलीला की पाठ परम्परा 3. संगीत और रागरागनियाँ 4. रास और सत्र परम्परा 5. ब्रजरास का असमिया रास का प्रभाव। उपसंहार। परिशिष्ट। संदर्भ-ग्रंथ सूची।

22. नरताम (रश्मि दिगंबर)

हिंदी लेखिकाओं की स्त्री विमर्शात्मक आलोचना का अध्ययन (विशेष सन्दर्भ- 2001 से 2021)।

निर्देशक : डॉ. चंद्रमोहन सिंह रावत एवं डॉ. अनिल राय

Th 28113

सारांश

कहा जा सकता है कि कोई भी सिद्धांत अपने आप में पूर्ण नहीं होता है| स्त्री विमर्शात्मक आलोचना अपनी महत्वपूर्ण उपलब्धियों के बावजूद कहीं न कहीं एकांकीपूर्ण समाज को निर्मित करने की दिशा में आगे बढ़ती हुई दिखाई देती है | जिसे समाज के हेतू सर्वग्राही बनाने के लिए स्त्री और पुरुष को समझना होगा कि एक लिंग की विशेषता को व्याख्यायित करने से पूर्व वह मानव हैं| जब तक दोनों लिंग एक-दूसरे की स्वतंत्रता का सम्मान करना नहीं सीख जाते तब तक स्त्री-विमर्श की सफलता संदेहास्पद ही होगी|

विषय सूची

1. स्त्री आलोचना का सैद्धांतिक पक्ष 2. स्त्री आलोचकों का व्यक्तित्व एवं आलोचना कर्म 3. स्त्री आलोचना में स़ी चुनौतियों की संभावनाएँ 4. स्त्री आलोचना में भूमंडलीकरण का प्रभाव 5. स्त्री आलोचना का भाषिक दृष्टिकोण। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

23. नागर (मोहित कुमार)

गाँधी के पत्रकारिता सम्बन्धी आदर्श और हरिजन सेवक (पत्रकारिता के समकालीन संदर्भ)।

निर्देशक : प्रो. राकेश कुमार

Th 28114

सारांश

गाँधी ने उस दौर में जब आज की तरह संसाधनों की भरमार नही थी , चिकित्सा, परिवहन, सूचना-संचार की व्यवस्था नहीं थी भारत के विभिन्न क्षेत्रों दौरा कर लोगों के जीवन में व्याप्त वास्तविक समस्याओं को जानकर उनके उन्मूलन के लिए लोगों को एकजुट किया था । गांधी के प्रयासों का असर भी देश ही नही अपितु देश के बाहर भी लोगों पर पड़ रहा था क्योंकि गांधी की मानवीय जीवन मूल्यों और जीवन के प्रति सच्ची श्रद्धा और आस्था थी जिसके कारण गांधी ने विश्व स्तर पर अनोखी ख्याति प्राप्त की थी। अब यह सवाल हमारे मन में उभरकर आता है कि नयी पीढ़ी पुरानी चली आ रही समस्याओं को नए बदलते दौर के साथ किस तरह देखती है । इस शोध में हरिजनों की समस्या हो या धर्म की समस्या हो या फिर आजादी के दौर में उभरी कृषि, स्वास्थ्य , शिक्षा या फिर नारी विषयक समस्याएं-ये सभी कुछ हद तक सुधार होने के बावजूद भी आज तक भी ज्यौं की त्यौं ही बनी हुई हैं। मनुष्य ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निरंतर विकास किया है , जीवन की बेहतर गुणवत्तापूर्ण दशा के लिए विश्वभर में नवीन दिशाओं में शोध भी हो ही रहें हैं लेकिन इन समस्याओं के स्थायी समाधान के लिए उतने उचित प्रयास किए नहीं गए हैं जितने प्रयासों की आवश्यकता थी । गांधी दूरदृष्टा थे और वे यह महसूस कर रहे थे कि आजादी तो आज नहीं तो कल भारत को मिल ही जानी है किंतु इसके बाद भी जो हरिजनों या दलितों या आर्थिक रूप से अक्षम वर्ग हैं उनका भविष्य भारत में किस प्रकार का होगा ! इस देश

को आजादी दिलाने में उस समय भी सभी लोगों का सहयोग इसी प्रकार का था जिस प्रकार आज भी भारत को विकसित बनाने की राह में सभी लोग अपना सहयोग दें रहें हैं।

विषय सूची

1. भारतीय पत्रकारिता का उद्‌भव और विकास 2. पत्रकारिता के आदर्श और स्वाधीनता संग्राम 3.गांधी के आदर्श और पत्रकारिता 4. गांधी की पत्रकारिता के आदर्श और हरिजन सेवक 5. समकालीन पत्रकारिता और गांधी। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

24. नौशाद अली

दयाप्रकाश सिन्हा के नाटकों का रंगमंचीय अध्ययन।

निर्देशिका : प्रो. अर्चना गौर

Th 28115

सारांश

अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध 'दयाप्रकाश सिन्हा के नाटकों का रंगमंचीय अध्ययन' को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है - प्रथम अध्याय 'रंगमंचीय अध्ययन:अभिप्राय, स्वरूप और प्रस्तुति' में रंगमंच क्या है? रंगमंच शब्द केवल नाटक के लिए प्रयोग किया जाता है या इसका कोई विस्तृत अर्थ भी है? आज जब हम कहते हैं कि मैं नाटक देखने जा रहा हूँ तो इसका अर्थ केवल नाटक की प्रस्तुति से नहीं है बल्कि नाटक लिखने से लेकर उसके अभिनय तक की सारी कला तक इसमें समाहित होती है । रंगमंच पर प्रस्तुति कैसे होती है? नाटक की प्रकृति क्या है? नाटककार, निर्देशक, अभिनेता और दर्शक रंगमंचीय अध्ययन से कैसे जुड़े हैं? नाटक की प्रस्तुति-प्रक्रिया के चरण, उसके घटक जैसे नाटककार, निर्देशक, अभिनेता, अभिकल्पक और दर्शक आदि सभी का विस्तृत-विश्लेषण किया गया है। द्‌वितीय अध्याय 'हिन्दी नाटकों की रंगमंचीय प्रस्तुति का इतिहास' में हिन्दी नाट्य-साहित्य के उद्‌भव और विकास का विश्लेषण करते हुए उसके इतिहास और प्रस्तुति पर प्रकाश डाला गया है । हिन्दी नाट्य परम्परा की शुरुआत कैसे हुई? इसके इतिहास का विभाजन किस प्रकार किया गया है? हिन्दी नाटकों की प्रस्तुति परम्परा का सूत्रपात किस दौर में हुआ? आदि विषयों को इस अध्याय में समझाने का प्रयास किया गया। तृतीय अध्याय 'दयाप्रकाश सिन्हा की रंग-परिकल्पना' के अन्तर्गत दयाप्रकाश सिन्हा के नाटकों को ऐतिहासिक, राजनैतिक और पौराणिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप में बांटकर उसके युगीन रूप को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। चतुर्थ अध्याय 'दयाप्रकाश सिन्हा के नाटकों की मंचीय प्रस्तुति' के अन्तर्गत नाटक का आलेख, नाटकों में दृश्यबंध और संवाद, नाटकों की मंचीय प्रस्तुति तथा प्रस्तुति के विभिन्न रूपों पर बात की गई है। पाचवें अध्याय 'दयाप्रकाश सिन्हा की नाट्यभाषा' के अन्तर्गत दयाप्रकाश सिन्हा के नाटकों की भाषा का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। नाटक की भाषा अन्य साहित्य-रूपों से भिन्न होती है। उसके शब्द बोले ही नहीं जाते, अभिनीत

भी होते हैं। अंत में उपसंहार के रूप में शोध-प्रबन्ध का निष्कर्ष दिया गया है एवं साथ ही शोध-प्रबन्ध की उपादेयता को निरूपित किया गया है।

विषय सूची

1. रंगमंचीय अध्ययन : अभिप्राय, स्वरूप और प्रस्तुति 2. हिन्दी नाटकों की रंगमंचीय प्रस्तुति का इतिहास 3. दयाप्रकाश सिन्हा की रंग-परिकल्पना 4. दयाप्रकाश सिन्हा के नाटकों की मंचीय प्रस्तुति 5. दयाप्रकाश सिन्हा की नाट्यभाषा। उपसंहार। परिशिष्ट।

25. प्रीति

हिंदी के नारीवादी उपन्यासों में स्त्री-मुक्ति की अवधारणा : मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों के संदर्भ में।

निर्देशक : प्रो. ओंकार नाथ मीना

Th 28116

सारांश

हिंदी में पिछले तीन दशकों के अंदर नारीवाद का तीव्र उभार हुआ है। खासकर कथा-साहित्य के क्षेत्र में प्रभावशाली लेखिकाएं उभरी हैं । प्रस्तुत शोधकार्य हिंदी के नारीवादी लेखन की वैचारिकी उसके अन्तर्विरोध, सीमाओं को समझने से है। 'हिंदी के नारीवादी उपन्यासों में स्त्री-मुक्ति की अवधारणा : मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों के संदर्भ में' प्रस्तुत शोध हिंदी के नारीवादी उपन्यासों में स्त्री-मुक्ति के प्रश्न, स्त्री-मुक्ति की अवधारणा को समझने का प्रयास है। हिंदी का नारीवादी लेखन शोषण-उत्पीड़न के विविध स्वरूपों को पहचानने से ज्यादा एक छोटे से मध्यवर्गीय तबके की समस्याओं पर केन्द्रित रहा है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जगह पुरुषों को शत्रु मानने की प्रवृत्ति, स्त्री प्रश्नों को सुधारवादी नजरिये से हल करने की कोशिश दिखाई देती है। हिंदी के अधिकांश नारीवादी उपन्यासों का स्वर इस शोषित व्यवस्था को बदलने से ज्यादा आमूल-चुल परिवर्तन कर अपनी सुरक्षित जगह सुनिश्चित करने भर से है। यह शोध मुख्यत : हिंदी की लोकप्रिय और विवादित लेखिका मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों के जरिये हिंदी के नारीवादी उपन्यासों में स्त्री मुक्ति के प्रश्न को समझने का प्रयास है। मैत्रेयी पुष्पा का समस्त नारीवादी लेखन और उनके नारीवादी उपन्यास स्त्री-मुक्ति के प्रश्न से टकराता है। लेकिन उनके उपन्यासों का विश्वसनीय आलोचनात्मक अध्ययन बहुत कम हुआ है। अन्य नारीवादी लेखिकाओं की तरह मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री-मुक्ति के प्रश्न को देखने की दृष्टि भी एकांगीपन का शिकार हो जाती है । बहुस्तरीय संघर्ष, शोषण-उत्पीड़न के विविध स्वरूपों को पहचानने से ज्यादा स्त्री-सत्ता, स्त्री वर्चस्व की कामना और राजनीतिक दावेदारी, स्त्री की दैहिक आज़ादी उनके चिन्तन में शामिल है । मैत्रेयी पुष्पा के माध्यम से हिंदी के अन्य नारीवादी लेखक-लेखिकाओं के उपन्यासों में स्त्री प्रश्नों को समझने, उनकी सीमाओं और अंतर्विरोधों को समझा गया है। यह शोधकार्य पांच अध्यायों में विभाजित है जो निम्नलिखित हे - प्रथम अध्याय- नारीवाद और स्त्री-मुक्ति : अवधारणा और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य द्वितीय अध्याय- हिन्दी में नारीवादी चिंतन और नारीवादी उपन्यास तृतीय अध्याय- मैत्रेयी पुष्पा

और उनका नारीवादी चिंतन चतुर्थ अध्याय- मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री प्रश्न पंचम अध्याय - मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री मुक्ति की अवधारणा उपसंहार और अंत में मैत्रेयी पुष्पा का साक्षात्कार भी शामिल किया गया है। स्त्री मुक्ति का प्रश्न मानव मुक्ति का प्रश्न है। स्त्री-मुक्ति का प्रश्न जितना साहित्यिक है, उससे कहीं ज्यादा सामाजिक। मेरे शोध का विषय भले ही मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों के सन्दर्भ में है लेकिन यह असल में मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों के आधार पर हिंदी के नारीवादी उपन्यासों का आलोचनात्मक अध्ययन है। समतामुलक समाज की स्थापना और हिंदी के नारीवादी लेखन को समझने में यह शोधकार्य उपयोगी बन सकें यही इस शोध की उपलब्धी होगी।

विषय सूची

1. नारीवाद और स्त्री मुक्ति : अवधारणा और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य 2. हिन्दी में नारीवादी उपन्यास 3. मैत्रेयी पुष्पा और उनका नारीवादी चिंतन 4. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री प्रश्न 5. मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासें में स्त्री मुक्ति की अवधारणा। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ।

26. प्रवीण

पश्चिमी हिमालय की घुमन्तू जनजातियों के लोक-साहित्य का अध्ययन (बक्करवाल एवं गद्दी जनजातियों के विशेष संदर्भ में)।

निर्देशक : प्रो. श्यौराज सिंह

Th 28117

सारांश

यह शोध कार्य हमें पश्चिमी हिमालय क्षेत्र की बकरवाल और गद्दी घुमन्तू जनजातियों के समृद्ध लोकसाहित्य से अवगत कराता हैं इसके अतिरिक्त यह भारत देश की ऐसी जनजातियाँ है जो धर्म और आरक्षण के आधार पर अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग प्रकार से बाँटी हुई हैं। इस विषय से हम यह जान पाए कि अलग-अलग धर्मों में होने के बावजूद सामाजिक ढांचा, रीति-रिवाज, शादी-विवाह, वेश भूषा, खान-पान आदि में कितनी भिन्नता या समानताएँ हैं। इन घुमंतू जनजातियों में प्राचीन समय से ही कबीलाई संस्कृति रही है। यही कारण है कि आज भी अनेक स्तरों पर विभाजित होते हुए भी इनमें गहरी समानता दिखाई देती है। लोकसाहित्य का अध्ययन एक तो इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि इसमें मानवमन के सूक्ष्मतम उद्गारों की स्वाभाविक व सजीव अभिव्यंजना मिलती है, दूसरा इस दृष्टि से कि उसमें मानव जीवन को परम्परागत संस्कृति एवं धार्मिक पद्धतियों का सम्यक् मूल्यांकन हो सकता है। शोध-विषय का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है कि इसके माध्यम से हम हिमालय क्षेत्र की घुमन्तू जनजाति का जो लोकसाहित्य और पुरातन भाषा की शानदार परम्परा को साहित्यिक जगत का ध्यान आकर्षित कर सकें। इनके गीत हिमालय क्षेत्र के पर्वतों और घाटियों में दूर-दूर तक बसे हुए गाँवों तक में सुनाई देती है। इस जाति ने अपने लांक-परम्परा और साहित्य को अपने से दूर होने नहीं दिया है। वे लोग जिनको हम गंवार कहते हैं उनके भोले-भाले ह्रदयों से गीतों के वे स्वर फूट पड़ते हैं जो उनके परिवेश, प्रकृति प्रेम,

जीवन शैली और सुख-दुःख की भावना से पैदा होते हैं। वस्तुतः किसी समुदाय या कबीले में व्यक्ति का सर्वसामान्य अनुभव तथा कल्पना का संभार एक समग्र जातीय जीवन के बीच इस तरह उभरता है कि व्यक्ति समुदाय की परिधि में सहज रूप में खो जाता है और इस प्रकार छोटा, सुसंबद्ध और एकरूप ग्रामीण समाज एक निश्चित भावात्मक मानस वातावरण का निर्माण करता है। लोकगीत और वार्ता इसी भावात्मक वातावरण की देन होते हैं। इस शोधकार्य में पश्चिमी हिमालय क्षेत्र का परिचय, इतिहास, भौगोलिक विस्तार, प्रमुख क्षेत्रों का परिचय तथा घुमन्तू बकरवाल और गद्दी जनजातियों के ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक आदि सभी पक्षों का विस्तार से वर्णन किया गया है। यह शोध इनके समृद्ध लोक-साहित्य से अवगत कराता हैं। आज भी अनेक स्तरों पर विभाजित होते हुए भी इनमें गहरी समानता दिखाई देती है। इनका लोक-साहित्य इनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन का दर्पण है तथा साथ ही साथ भारतीय लोक साहित्य की घरोहर को अधिक समृद्ध बनाता है।

विषय सूची

1. पश्चिमी हिमालय का परिचय 2. घूमंतू जनजाति : एक परिचय 3. बक्करवाल जनजाजि का अध्ययन 4. गद्दी जनजाति का अध्ययन 5. बक्करवाल व गद्दी जनजातियों का लोक-साहित्य। उपसंहार। परिशिष्ट। साक्षात्कार। संदर्भ ग्रंथसूची।

27. मनोज कुमार

रांगेय राघव और फणीश्वरनाथ रेणु के रिपोर्ताजों का तुलनातमक अध्ययन।

निर्देशिका : प्रो. आशा रानी

Th 28118

सारांश

साहित्य की हर विधा अपने मूल में विशेष दृष्टिकोण से अंतरित होती है। आधुनिक युग में रिपोर्ताज गद्य की नवीन विधाओं में अग्रणी है जिसके माध्यम से समसामयिक घटनाओं को जन-जन तक पहुंचाया जा सकता है। पत्रकारिता में समाचार पत्र और मीडिया के अन्य उपकरणों के द्वारा किसी विशेष घटना को संक्षिप्त और सनसनीखेज तरीके से प्रस्तुत किया जाता है जिससे घटना की साधारण और संक्षिप्त सूचना मिलती है जो समय बीतने पर धुंधली और अस्पष्ट-सी नज़र आने लगती है। रिपोर्ताज किसी रिपोर्ट का कलात्मक रूप होता है जिसे लेखक घटनास्थल पर जाकर पूरी जानकारी जुटाकर इस प्रकार प्रभावी बनाता है कि उसका असर देर तक बना रहे। समय के प्रवाह में महत्वपूर्ण रिपोर्ट को भी भुलाया जा सकता है किन्तु रिपोर्ताज उस घटना का ऐसा महान दस्तावेज बन जाता है कि न तो उसे सदियों तक नहीं भुलाया जा सकता है और न ही वह उसकी चमक कभी धूमिल होती है। किसी सत्य घटना में भावनात्मकता के साथ विचारों की तरंगे उठाने वाला लेखक रिपोर्ताज की सृष्टि करता है। रिपोर्ताज लेखक की सफलता इसी में है कि वह कम से कम पंक्तियों में अपने शाब्दिक कौशल द्वारा घटना के यथार्थ को सफलता

पूर्वक अंकित कर सके। यह विधा भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य में भी एकदम नयी विधा के रूप में आयी है। रिपोर्ताजकार में पत्रकार और साहित्यकार के गुण होने के कारण पत्रकारिता और साहित्यिकता इसका मिलन बिंदु है। समकालीन साहित्य में रिपोर्ताजों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती जा रही है। इसका प्रमुख कारण यह है कि समसामयिक घटनाओं की यथार्थ प्रस्तुति की संभावनाएं रिपोर्ताजों में ही देखी जा सकती है। रिपोर्ताज लेखक घटना की तह में जाकर किसी भी घटना को प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत करता है। बीते कुछ वर्षों में अचानक ही कुछ ऐसी घटनाएँ प्रतीत हुई जिनको महज घटना या समाचार नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इन घटनाओं को रिपोर्ट में समेटा तो जा सकता है किंतु इन घटनाओं के मर्म को तभी आत्मसात किया जा सकता है जब लेखकों की आँखों के सामने ये घटनाएँ घटित होती है। कोरोनो महामारी की विभीषिका को समस्त दुनिया ने अपनी आँखों से देखा था, ऐसी भयंकर आपदाओं को रिपोर्ताजों के द्वारा ही अनुभूत किया जा सकता है। ऐसी महामारियों से प्रभावित रिपोर्ताजों के द्वारा न केवल दुनिया भर में व्याप्त महामारी से झूझते लोगों के आंकड़े मिले अपितु इसके निवारण के लिए टीकाकरण की जानकारियाँ भी मिली। साहित्य की अन्य विधाओं अथवा रिपोर्ट आदि से यह संभव नहीं कि किसी की बिखरी हुई जिंदगी को जाना जा सके ऐसे में रिपोर्ताज ही संप्रेषण का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है जिससे समाज में व्याप्त समस्याओं की जद में पहुंचा जा सकता है। रिपोर्ताज सामान्य समाचारों से अत्यंत भिन्न तथा समसामयिक जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं से संबद्ध होते हैं जिसका मानव हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता है। ये सामायिक के साथ-साथ स्थायी होते हैं किंतु अन्य साहित्यिक विधाओं से करीबी रिश्ता होने के कारण यदा-कदा इसे रेखाचित्र, संस्मरण, फ़ीचर, निबंध आदि समझने में भूल भी होती है पर निश्चित रूप से घटना का प्रत्यक्ष-दृष्टा होने के कारण सत्य को प्रस्तुत करने में रिपोर्ताज ही सक्षम हैं। रिपोर्ताजों के विषय में यह कहना सर्वथा अनुचित होगा कि हिंदी में रिपोर्ताज केवल बाढ़, अकाल, सूखे आदि पर ही लिखे गए हैं, अपितु अनेक ज्वलंत विषयों को कथादि में संकलित किये जाने के कारण आज इनका महत्व बढ़ गया है।

विषय सूची

1. हिन्दी-रिपोर्ताजों का विकास 2. रांगेय राघव के रिपोर्ताजों का विशेष अध्ययन 3. फणीश्वरनाथ रेणु के रिपार्ताजों का विशेष अध्ययन 4. रांगेय और रेणु के रिपोर्ताजों की अतंर्वस्तु का तुलनात्मक अध्ययन 5. रांगेय और रेणु के रिपोर्ताजों का भाषा और शिल्प के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन 6. उपसंहार। संदर्भ ग्रंथसूची।

28. मिश्रा, अभिनीत कुमार

हिंदी सिनेमा में शहर बनारस का संस्कृतिमूलक अध्ययन।

निर्देशक : डॉ. राजीव रंजन गिरी

Th 28119

सारांश

वर्तमान वैश्वीकरण के युग में सिनेमा विधा की लोकप्रियता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। किसी विशेष देश का सिनेमा उस देश की संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता दिखाई देता है। सिनेमा अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीच आवाजाही कर सकता है और वह ऐसा करता भी है। वह यथार्थ और काल्पनिकता का इस्तेमाल करता है। उसे नाटक की तरह उसे पात्रों की जरूरत तो होती है लेकिन सिनेमा नाटक की तरह सशरीर पात्रों और निर्धारित मंच से बंधा नहीं होता। सिनेमा कथानक का इस्तेमाल करता है कथानक सिनेमा का साहित्य होता है। एक ओर जहाँ हम लिखित साहित्य को अपने दिमागी परदे पर देखते हैं, वहीं दूसरी ओर सिनेमा अपने साहित्य को हमारी आँखों के सामने परदे पर मूर्त कर देता है, उसमें शेष सारी कलाएँ उपस्थित कर देता है। इसलिए सिनेमा मनोरंजन सीमा तोड़कर शीघ्र ही व्यक्ति के मन का विरेचन करने लगता है। सिनेमा अपने मनोरंजन पक्ष के साथ-साथ समाज में व्यापक बदलाव लाने की क्षमता की वजह से अति महत्वपूर्ण है। सिनेमा या मनोरंजन का कोई भी माध्यम समय में बदलाव के आधार पर बदलता रहता है। आज हिन्दी के भौगोलिक विस्तार में भी सिनेमा की भूमिका बढ़ती जा रही है। भारत के गैर-हिन्दी प्रदेशों से लेकर समीपवर्ती देशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में सिनेमा की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी है। हिन्दी सिनेमा भाषा, साहित्य और संस्कृति का दूत बनकर इन भू-भागों में पहुंचने के लिए अग्रसर है। यथार्थवादी संस्कृति को रूप देने में सिनेमा ने प्रारंभ से ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। यद्यपि प्रारंभिक सिनेमा में आज़ादी से पूर्व परिस्थितियों में ऐतिहासिक, धार्मिक पहलू ज्यादा हावी थे। यथा सिकंदर, पुकार, झांसी की रानी आदि फिल्मों में कुरीतियों के विरुद्ध जबरदस्त मोर्चा खोला गया। अब यदि बात बनारस की करें तो बनारस ने साहित्यकारों, फिल्मकारों, गीत और संगीतकारी को शुरू से ही आकर्षित किया है। अमेरिकी लेखक मार्क ट्वेन (1835- 1210) ने बनारस के बारे में सही लिखा है- "बनारस इतिहास से भी पुरातन है, परंपराओं से पुराना है, किम्वदंतियों (लिजेण्डस) से भी प्राचीन है और जब इन सबको एकत्र कर दें तो इन संग्रह से भी दोगुना प्राचीन है।" गालिब द्वारा अपनी सबसे लंबी नज्म 'चिराग-ए-देर' का बनारस में लिखा जाना, भारतेंदू मंडल की साहित्यिक रचनाओं की समृद्धता, उस्ताद बिस्मिल्ला खां के शहनाई की धुन इत्यादि को प्रेरणा बनारस के संस्कृति ने ही दी है। लोक मान्यताओं में बनारस जीवन काल तक ही सीमित नहीं अपितु मृत्यु के उपरांत भी महत्व रखता है। बनारस की संस्कृति और परंपरा में संपूर्ण भारत के सांस्कृतिक धागे इतनी महीन तरीके से जुड़ें है जिससे बनारस सिनेमा समेत अन्य कई विधाओं का केन्द्र हो जाता है। 21वीं शती में तकनीक के नए आयाम विकसित हुए, जिसकी वजह से अभिव्यक्ति के नए और विस्तृत मार्ग भी खुले। इसी क्षेत्र में सिनेमा ने भी समाज में आधुनिक साधनों के साथ समाज को उसकी पूरी बनावट और बुनावट के साथ चित्रित किया। साहित्यिक विधाओं के इतर सिनेमा एक नए हस्ताक्षर के साथ उदित हुआ। इसी रूप में यदि मैं अपने शोध विषय की बात करूं तो दिखाई पड़ता है कि 21वीं शती के सिनेमा ने बनारस में व्याप्त परम्परा और आधुनिकता के सामंजस्य को, सामाजिक विरोधाभास

को, उसकी जीवंतता को और युवा वर्ग की महत्वाकांक्षाओं को बहुत बारीकी से पकड़ा है जो साहित्य के कथानक से छूट गया लगता है। जिसका विस्तृत अध्ययन मैंने अपनी शोध में किया है,

विषय सूची

1. बनारस शहर : पारंपरिक और नई सदी का बनारस 2. संस्कृति एवं संस्कृतिमूलक अध्ययन : अवधारणा एवं अन्य पक्ष 3. बनारस शहर : संरचना और परिवेश 4. बनारस अंचल का सांस्कृतिक पक्ष और सिनेमा में बनारस 5. हिन्दी सिनेमा में बनारस : विश्लेषण एवं संभावना उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

29. मिश्र (शिवनाथ)

हिंदी क्षेत्र की सांस्कृतिक चेतना के निर्माण में लोकनाट्य का योगदान (रामलीला, रासलीला, नौटंकी के विशेष संदर्भ में)।

निर्देशक : डॉ. सत्य प्रिय पाण्डेय, प्रो. मोहन एवं प्रो. संजय कुमार
Th 28120

सारांश

मेरे प्रस्तावित शोध विषय का शीर्षक है - हिंदी क्षेत्र की सांस्कृतिक चेतना के निर्माण में लोकनाट्य का योगदान (रामलीला, रासलीला, नौटंकी के विशेष संदर्भ में) लोकनाट्य के प्रति मेरी रूचि बचपन से ही रही है। बचपन जब मैं अपने अभिभावकों के साथ नौटंकी देखने जाता था तो मुझे सबसे ज्यादा नौटंकी का विदूषक प्रभावित करता था। उसकी ऊटपटांग बातें दर्शक दीर्घा में बैठे तमाम लोगों को हसने पर मजबूर कर देती थी। विदूषक के जिस बात पर लोग ठहाके लगा कर हंसते थे वह बात बहुत गंभीर होती थी। विदूषक समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, आडंबर की हँसी उड़ाता ही था साथ वह शोषक वर्ग के वर्ग चरित्र को भी बड़ी बारीकी से खोलता था। वह व्यंग्य के माध्यम से कुरीतियों, कुप्रथाओं आदि पर चोट करता था। किसी भी समाज में संदेश पहुँचाने का यह तरीका बहुत ही प्रभावशाली है। समाज की चेतना के निर्माण में इसका बहुत ही योगदान होता है। इसी कारण मेरी रूचि धीरे- धीरे परंपराशील नाट्य की तरफ बढ़ने लगी और मैं इसे गंभीरता से लेने लगा। मैं सोचने लगा कि एक कम पढ़ा लिखा समाज आडम्बरों, कुप्रथाओं, कुरीतियों आदि को जिस नजरिये से देखता है उस दृष्टि का निर्माण किस प्रकार होता है। शोषक वर्ग के शोषणकारी मूल्यों को समझने के लिए उसके पास जो दृष्टि बनी है वो दृष्टि कैसे निर्मित हुई है। इस दृष्टि के निर्माण में लोकनाट्य की क्या भूमिका है। प्रस्तावित शोध - विषय में मैं इन्हीं सारे सवालों का पड़ताल किया हूँ। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में नाटक को पंचम वेद कहा गया है। भरतमुनि पंचम वेद को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि शूद्र तथा वन्य जातियों के लोग जो वेद पाठ से वंचित हैं उनके लिए इस पंचम वेद की आवश्यकता हुई। कहने का आशय यह है कि इन कम पढ़े- लिखे, अशिक्षित वर्ग की चेतना के निर्माण के लिए ऐसे वेद की आवश्यकता पड़ी जो इन वर्गों की जनता के लिए उपादेय हो। शुरुआत में प्रायः देखा गया कि संस्कृत नाटकों की परंपरा उच्च वर्ग तथा

राजकुल के लोगों का मनोरंजन करने में विशेष बलवती रही। कालांतर में सामान्य जनता के शिक्षा, मनोरंजन, नीति तथा धर्म का उपदेश देने के लिए विभिन्न शैलियों का उदय हुआ। विभिन्न भाषाओं और बोलियों के विकास के साथ 11 वीं -12 वीं शताब्दी के विशेष सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थिति में संस्कृत नाट्य परंपरा कुछ क्षीण होने लगी। इस विशेष सांस्कृतिक परिस्थिति में लोकनाट्य परंपरा खूब फली-फूली।

विषय सूची

1. लौक : अवधारणाए सन्दर्भ और विस्तार (हिंदी क्षेत्र के सन्दर्भ में) 2. लोकनाट्य का स्वरूप और विकास 3. हिन्दी लोकनाट्य के विविध रूपों का परिचय 4. हिन्दी क्षेत्र की सांस्कृतिक चेतना और लोकनाट्य 5. हिन्दी लोकनाट्य कि विविध शैलियॉं (प्रस्तुति परक सन्दर्भ)। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

30. मिश्र (आदर्श कुमार)

केदारनाथ सिंह के काव्य में `लोक-चेतना` की अभिव्यक्ति।

निर्देशक : डॉ. सत्य प्रकाश सिंह

Th 27332

सारांश

मेरे शोध कार्य का विषय 'केदारनाथ सिंह के काव्य में लोक चेतना की अभिव्यक्ति' है। शोध कार्य विषय के प्रति एक नवीन दृष्टि तो बनाता ही है साथ ही विषय को प्रमाणिक तथा सर्वग्राह्य बनाता है। ज्ञान के क्षेत्र में शोध कार्य की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है जिससे मनुष्य तथा समाज दोनों ही समृद्ध होते हैं। शोधकार्य में पुराने तथ्यों पर भी नये ढंग से विचार किया जाता है तथा उसकी तर्क सम्मत व्याख्या प्रस्तुत की जाती है। केदारनाथ सिंह के काव्य पर पूर्व में शोध कार्य हुए हैं किन्तु उनकी कविताओं में लोक चेतना की अभिव्यक्ति विषय पर मेरा शोध कार्य नवीन एवं मौलिक है। केदारनाथ सिंह समकालीन हिन्दी कविता के सबसे चर्चित नामों में से एक नाम रहे हैं। उनकी काव्य यात्रा की शुरुआत अज्ञेय द्वारा सम्पादित पत्रिका 'तार- सप्तक' के तीसरे अंक से हुई थी। काव्य लेखन के शुरुआती दिनों से ही इनकी कविताओं तथा गीतों में लोक जीवन की अभिव्यक्ति स्पष्ट तौर पर देखी जा सकती है।

विषय सूची

1. लोक की अवधाणा 2. लोक जीवन और केदारनाथ सिंह की कविता 3. आधुनिक समय में लोक जीवन की चुनौतियॉं और केदारनाथ सिंह की कविता 4. केदारनाथ सिंह के काव्य में प्यॉवरण और लोक का अन्तर्सम्बन्ध 5. समकालीन हिन्दी कविता और केदारनाथ सिंह का काव्य शिल्प और भाषा। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

31. मीणा (बीना)

सामाजिक परिदृश्य के संदर्भ में चित्रा मुद्गल का कथा साहित्य: एक अध्ययन।

निर्देशिका : प्रो. मधु कौशिक एवं प्रो. निरंजन कुमार एवं कुमुद शर्मा

Th 28121

सारांश

आज साहित्य सामाजिक परिदृश्य के चित्रण की वजह से ही अपने समय और जीवन के यथार्थ से गहराई तक जुड़ा हुआ है। सामाजिक यथार्थ को जीवन से जोड़ने की कला चित्रा मुद्गल के लेखन की विश्वसनीयता को बढ़ाती है। रचना में सामाजिक यथार्थ की उपस्थिति को भी वे अनिवार्य मानती है। चित्रा मुद्गल का साहित्य समय और समाज से पूर्णत: प्रभावित है उन्होंने अपनी रचनाओं में जो कथानक लिए हैं वे भारतीय समाज के विस्तृत चित्रफलक को प्रस्तुत करते हैं। चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य में शोषित, प्रताड़ित, उपेक्षित और रूढ़ियों के बंधन में बंधे रहने वाले शोषितों एवं नारी का यथार्थ व अनुभूतिपरक चित्रण विद्यमान है। समाज में निम्न मध्यवर्ग में आर्थिक दबावों के तहत जन्मी संघर्षशीलता और शोषण से मुक्त होने की चाहत लिए नारी के संघर्ष का चित्रण और मानव समाज को नारी जीवन के संघर्षों, वास्तविक स्थितियों एवं समस्याओं से परिचित करवाकर उसके प्रति सकारात्मक सोच एवं दृष्टिकोण पैदा करना है। चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य के माध्यम से उन पीड़ित, शोषित, प्रताड़ित लोगों को एक नई जीवन जीने की राह मिलेगी जो सदियों से सताए हुए है। चित्रा मुद्गल ने अपनी रचनाओं में जिन विषयों को उठाया है वे सभी आम जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनकी रचनाओं का मुख्य मुद्दा शोषित और पीड़ित वर्ग रहा है। उनकी रचनाएं सर्वांगीण विकास की चाह रखती है। हिंदी साहित्य में चित्रा मुद्गल मानवतावादी साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित है।

विषय सूची

1.चित्रा मुद्गल का जीवन-परिचय एवं रचना-संसार 2. चित्रा मुद्गल के कथा-साहित्य में भूमंडलीकरण का यथार्थ 3. चित्रा-मुद्गल के कथा-साहित्य में नारी का प्रतिरोधी स्वर 4. सामाजिक परिदृश्य का यथार्थ और चित्रा मुद्गल का कथा-साहित्य 5. चित्रा मुद्गल का कथा-साहित्य-भाषिक संरचना एवं शिल्प। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

32. मीना कुमारी

20वीं सदी के अंतिम दशक की हिंदी कविता में अस्मिता विमर्श।

निर्देशक : डॉ. मनोज कुमार कैन

Th 28122

सारांश

20वीं शताब्दी में ऐसे ही विचार-विमर्श उन विषयों पर पाश्चात्य साहित्य में आरम्भ हुए जो उस समय उपेक्षित थे। इसमें स्त्री, दलित प्रमुख रूप से थे। आजादी के बाद भारत में भी रचनाकारों का ध्यान इस तरफ गया तो उन्होंने महसूस किया की स्त्रियों और दलितों की स्थिति समाज में पिछले काफी समय से दयनीय है, इस पर रचनाकार अपनी लेखनी चलाने लगे। इस लेखनी की धार ने अभी गति नहीं पकड़ी थी, यह बड़े ही सहज रूप से चल रही थी। किंतु 20वीं शताब्दी के अंतिम दशक में इस लेखनी की गति में अचानक तेजी आई और इसने उन सभी विषयों को

लिपिबद्ध किया जो समाज में नहीं उठाए जाते थे। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के बाद इस शब्द ने नई अर्थवत्ता प्राप्त की है। इसका सबसे अधिक प्रयोग साहित्य, राजनीति और समाजशास्त्र जैसे अनुशासनों में अधिक देखा जाता है। विमर्श के वर्तमान स्वरूप और वर्तमान अर्थ के समबन्ध को पाश्चात्य साहित्य से जोड़कर देखा जाता है। किसी प्रासंगिक मुद्दे पर धर्म चर्चा करना, धर्माधिकारी द्वारा उपदेश देना विमर्श की क्षेणी में आता है। किंतु जब समाज के हाशिए पर रहने वाली अस्मिताओं ने अपनी दुनिया के अस्तित्वगत सवालों को राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में उठाना प्रारम्भ किया, तब उसे अस्मिता विमर्श' कहा गया। साहित्य में इसे नए प्रवाह के रूप में देखा गया। इस धारा को 'विमर्शमूलक का लेखन' की संज्ञा दी गई। 'अस्मिता विमर्श' या 'विमर्शवादी' लेखन की साहित्य में एक समृद्ध स्थिति है। विमर्श के इतिहास में सबसे पहले 'स्त्री विमर्श' का आगमन हुआ। इसके बाद 'दलित विमर्श' आया, फिर आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, प्रवासी विमर्श, पिछड़ा वर्ग विमर्श, भाषा विमर्श, थर्ड जेंडर विमर्श, पर्यावरण विमर्श, क्षेत्रीयता विमर्श, समलैंगिक विमर्श, बाल विमर्श, किसान, विमर्श आदि इस धारा से जुड़ते गए।

विषय सूची

1. अस्मिता विमर्श : अर्थ, स्वरूप और परिभाषा 2. दलित अस्मिता विमर्श और हिन्दी कविता 3. स्त्री अस्मिता विमर्श और हिन्दी कविता 4. आदिवासी अस्मिता विमर्श और हिन्दी कविता 5. अस्मिता विमर्श के अन्य रूप 6. अस्मिता विमर्श के संवाहक भाषिक उपकरण। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

33. मीना (योगेन्द्र कुमार)

नामवर सिंह की आलोचना दृष्टि पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं हजारीप्रसाद द्विवेदी का प्रभाव।

निर्देशक : प्रो. मनोज कुमार सिंह

Th 28123

सारांश

शोध विषय हिंदी आलोचना परंपरा की गवेषणा करने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस गवेषणा में तीसरी पीढ़ी के आलोचक नामवर सिंह पर पूर्ववर्ती आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के प्रभाव का आलोचनात्मक, विश्लेषणात्मक व तुलनापरक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । जिससे पहली और दूसरी परंपरा को समझने में न सिर्फ सहायता मिलेगी अपितु नामवर सिंह की पृथक परंपरा का भी सुस्पष्ट विश्लेषण संभव होगा, जिसमें प्रगतिवाद और प्रगतिशीलता में भेद रखते हुए हिंदी आलोचना के छिद्रों को भरने की चेष्टा से एक सम्यक् आलोचना दृष्टि उपलब्ध होगी तथा अतिवादियों का तथ्यपरक और आग्रहमुक्त चिंतन की ओर झुकाव होगा। प्रस्तुत शोध का महत्व इस दृष्टि से भी है कि किस प्रकार परंपरा और इतिहास एक से दूसरी पीढ़ी में प्रवाहशील होते हुए पूर्ववर्ती से परवर्ती बनने की ओर अग्रसर रहते हैं, ज्ञान की इस गत्यात्मकता को हिंदी आलोचना की तीन पीढ़ियों के संदर्भ में समझने की आवश्यकता है। नामवर सिंह के रचना संसार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के प्रभाव के पक्षों को स्पष्ट और व्यवस्थित करने की दृष्टि से यह शोध महत्व का विषय बन जाता

है। हिंदी आलोचना में आज के दौर में यह शोध और प्रासंगिक हो जाता है, जब कहा जाता है कि आलोचना की विद्या वर्तमान में तंद्रा के दौर से गुजर रही है। इस शोध के द्वारा हिंदी आलोचना की भ्रांत धारणाओं की ओर भी विद्वानों का ध्यान जाएगा जिससे हिंदी आलोचना का संवादात्मक विकास होगा। वादाग्रह और अतिआग्रह के कारण हिन्दी आलोचना तथ्य च्युत हुई है। सत्य अपनी समग्रता में बहुआयामी होता है, इस संबंध में जैनमत के अनेकांतवाद सिद्धांत की प्रेरणा से हिंदी आलोचना को उसके बहुआयामों में समझने की दृष्टि से प्रस्तुत शोध महत्वपूर्ण और प्रासंगिक हो जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मनोवैज्ञानिक और रसस्वी दृष्टि का अवलंबन किया है, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने धार्मिक दृष्टि और नामवर सिंह ने सामाजिक - आर्थिक ढांचे पर आधारित वामपंथी चिंतन से अपना आलोचना संसार तैयार किया है। इन तीनों ढांचों के संबंध सूत्रों को हिंदी आलोचना के परिप्रेक्ष्य में समझने की दृष्टि से यह शोध महत्व का विषय हो जाता है। विद्वानों ने जिस अविवेकी ढंग से रस को अस्वीकृत किया है उसका भी परिहार प्रस्तुत शोध में प्रसंगानुसार किया गया है, जिससे रस की प्रसंगानुकूलता पुनर्प्रतिष्ठित होती हुई दिखाई पड़ती है। हिंदी आलोचना में दक्षिणपंथियों की मोहाविष्ट इतिहास दृष्टि तथा वामपंथियों की उपेक्षणीय इतिहास दृष्टि परस्पर एक दूसरे से संघर्षरत होती दिखाई पड़ती है। इनका प्रयोग जन समुदाय को दिग्भ्रमित करने के निमित्त किया जाता है। सम्यक् इतिहास दृष्टि तथ्यों को नग्न आँखों से देखती हुई उसकी समग्रता में व्याख्या करती है तब फ्रायड, मार्क्स , बर्गेसा, अरविंद और फ्रेड्रिक नीत्शे का सम्मिलित चिंतन विरोधी नहीं अपितु जीवन की बहुआयामी व्याख्या दिखाई पड़ता है। अविवेकी या तो इतिहास से मोहाविष्ट हो जाता है या फिर वह उपेक्षणीय मनोवृत्ति का शिकार हो जाता है। हिंदी आलोचना इतिहास दृष्टि की परंपरा को सम्यक् दृष्टि से देखने - परखने के कारण प्रस्तुत शोध और भी प्रासंगिक हो जाता है । वस्तुतः भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल सूत्र 'विरूद्धों का सामंजस्य 'है किंतु उसमें स्वीकार और अस्वीकार का विवेक और साहस होना अनिवार्य शर्त है।

विषय सूची

1. हिन्दी आलोचना का प्रारंभिक स्वरूप 2. हिन्दी आलोचना और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 3. हिन्दी आलोचना और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 4. नामवर सिंह की आलोचना दृष्टि पर आचार्य रामचन्द्र शुक्लका प्रभाव 5. नामवर सिंह की आलोचना दृष्टि पर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदीका प्रभाव 6. हिन्दी आलोचना और नामवर सिंह। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

34. मीना (विकेश कुमार)

दलित स्त्री आत्मकथा और सामाजिक मुक्ति के प्रश्न।

निर्देशक : प्रो. संजय सिंह बघेल

Th 28708

सारांश

प्रस्तुत शोध प्रबंध में दलित स्त्री आत्मकथा और मानव मुक्ति के प्रश्न शीर्षक के अंतर्गत हिंदी साहित्य में आत्मकथा विधा के अतीत से वर्तमान तक की यात्रा को विस्तार से समझाया गया है! हिंदी साहित्य में आत्मकथा विधा की विकास यात्रा में दलित आत्मकथा और स्त्री आत्मकथा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है!! हिंदी साहित्य में आत्मकथा विधा ने मराठी आत्मकथा से ऊर्जा और प्रेरणा ग्रहण की है! यही कारण है कि हिंदी में आत्मकथा का चर्मोत्कर्ष 1970 के बाद देखने को मिलता है! इस विकास यात्रा में हरिवंश राय बच्चन, बैचेन शर्मा उग्र, मैत्रेयी पुष्पा, इत्यादि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है!

विषय सूची

1. आत्मकथा लेखन : अतीत और वर्तमान 2. आत्मकथा लेखन : महिला और आत्मकथा (2000 से अभी तक) 3. महिला आत्मकथाओं में अभिव्यक्त स्त्री जीवन 4. दलित महिला आत्मकथाओं में संघर्ष और मुक्ति के प्रश्न 5. इलित महिला आत्मकथाओं का शिल्पगत वैशिष्ट्य। उपसंहार। अन्य सामग्री।

35. यादव (अखिलेश)

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य में पहाड़ी जीवन का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन (उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश के विशेष संदर्भ में)।

निर्देशक : डॉ. संजय कुमसर सेठ

Th 28124

सारांश

भारत एक बहुआयामी राष्ट्र है, जहाँ भौगोलिक विविधता उतनी ही सघन है जितनी कि उसकी भाषाई, सांस्कृतिक और सामाजिक परंपराएँ। हिमालय की ऊँची बर्फीली श्रृंखलाओं से लेकर सह्याद्रि, अरावली और पूर्वोत्तर की सुरम्य पर्वतमालाओं तक विस्तृत यह भूगोल न केवल देश की भौगोलिक रचना का अंग है। बल्कि इसके आत्मिक और सांस्कृतिक स्वरूप का भी आधार है। विशेष रूप से उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश जैसे पर्वतीय प्रदेशों में जीवन की गति, आकांक्षाएँ, संघर्ष और संस्कृति समस्त भारतीयता के एक विशिष्ट परिप्रेक्ष्य को उद्घाटित करते हैं। पर्वतीय जीवनशैली, बाह्य रूप से भले ही प्रकृति की गोद में शांत और सुसज्जित प्रतीत होती हो, परंतु यथार्थ में यह जीवन एक कठिन साधना के समान है जिसमें प्राकृतिक असंतुलन, भौगोलिक विकटता, संसाधनों की न्यूनता तथा सामाजिक अवसंरचना जैसी समस्याओं से सतत संघर्ष निहित है। इन प्रदेशों में जनसामान्य को जीवनयापन हेतु अत्यंत विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, जिसमें प्राकृतिक आपदाएँ जैसे- भूस्खलन, बादल फटना, बर्फबारी, और वर्षा जनित आपदाएँ उनकी दिनचर्या का अनिवार्य हिस्सा बन चुकी हैं। इन आपदाओं का प्रभाव केवल पर्यावरणीय ही नहीं, अपितु सामाजिक और आर्थिक संरचना पर भी गहरा पड़ता है। उत्तराखंड व हिमाचल के ग्रामीण अंचलों में कृषि, पशुपालन और वानिकी आजीविका के मूल आधार हैं. किंतु पर्वतीय ढलानों पर सीमित

भूमि, खड़ी कृषि पद्धतियाँ, सिंचाई के साधनों की न्यूनता, तथा यातायात के अविकसित ढांचे इन कार्यों को अत्यंत श्रमसाध्य एवं अलाभकारी बना देते हैं। अनेक स्थानों पर एक प्राथमिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु मीलों की पैदल यात्रा अनिवार्य है। ऐसी स्थिति में जीवन केवल निर्वाह का संघर्ष बनकर रह जाता है। "पर्वतीय समाज की विशेषता यह है कि वहाँ प्रकृति के प्रति गहरी आस्था, सहजीवन की भावना और सामुदायिक सहयोग की परंपरा विद्यमान हैं। नदियों, वृक्ष, पर्वत एवं जल-स्रोत केवल भौतिक संसाधन नहीं हैं, अपितु वे लोकसंस्कृति के अभिन्न प्रतीक हैं। किंतु भूमंडलीकरण और उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों के प्रभाव ने इस ताने-बाने को झकझोर कर रख दिया है। पर्वतीय संसाधनों का वाणिज्यिक दोहन, अनियोजित पर्यटन, और निर्माण कार्यों की अंधाधुंध प्रवृत्तियों न केवल पारिस्थितिक असंतुलन को जन्म दे रही हैं, बल्कि वहाँ के लोक-जीवन और संस्कृति को भी संकट में डाल रही हैं। आज की स्थिति यह है कि इन पर्वतीय क्षेत्रों में पलायन, बेरोज़गारी, शैक्षिक पिछड़ापन और स्वास्थ्य सुविधाओं की घोर अनुपलब्धता जैसे ज्वलंत प्रश्न्न समाज के विकास में बाधक बनते जा रहे हैं। जनसंख्या का एक बड़ा वर्ग समतल क्षेत्रों की ओर प्रस्थान कर रहा है, जिससे न केवल सांस्कृतिक अपर्वचन हो रहा है, बल्कि इन क्षेत्रों की जनसंख्या संरचना भी असंतुलित होती जा रही है। अतः यह अनिवार्य हो जाता है कि पर्वतीय जीवन की जटिलताओं, विशेषताओं एवं संभावनाओं का गंभीरतापूर्वक अनुशीलन किया जाए। यह शोधकार्य उसी दिशा में एक प्रयास है. जो उत्तराखंड और हिमाचल जैसे पर्वतीय प्रदेशों में जीवन की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक यथार्थता को उघाड़ने का प्रयास करेगा, और इस विश्लेषण के माध्यम से न केवल पहाड़ी जीवन के संघर्ष को रेखांकित करेगा, बल्कि उनके आत्मगौरव, सहजीवी संस्कृति तथा प्रकृति के प्रति श्रद्धाभाव को भी उजागर करेगा।

विषय सूची

1. पहाड़ी जीवन : स्वरूप और समस्याएँ 2. चयनित कथाकारों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व 3. पहाड़ी जीवन पर केन्द्रित कथा साहित्य का सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन 4. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में पर्यावरण और पहाड़ी जीवन 5. विवेच्य कथा साहित्य का शिल्पगत सौंदर्य। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

36. यादव (ज्योति)

इक्कीसवीं सदी के हिंदी फ़िल्मी गीतों में स्त्री छवि का अध्ययन (सन् 2000-2020 के फ़िल्मी गीतों के विशेष संदर्भ में)।

निर्देशिका : प्रो. सुधा सिंह

Th 28709

सारांश

स्त्री छवि एक सामान्य किंतु व्यापक अर्थक्षेत्र वाला पद है जो समाज, संस्कृति और साहित्य के भीतर स्त्री के प्रति निर्मित धारणाओं, अपेक्षाओं, भूमिकाओं और मान्यताओं के समग्र रूप को अभिव्यक्त करता है। स्त्री छवि का अर्थ स्त्री के बाह्य स्वरूप या व्यवहार से नहीं है बल्कि उन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं से है जिनके माध्यम से समाज

स्त्री को देखता, परिभाषित करता है। प्रस्तुत शोध विषय के संदर्भ में यह फ़िल्मी गीतों से जुड़ा हुआ है। फ़िल्मी गीत अधिकतर पुरुष गीतकार द्वारा लिखे गए हैं। इसीलिए कहना न होगा कि स्त्री छवि भी पुरुषों द्वारा निर्मित है। फ़िल्मी गीतों का अध्ययन हमें यह समझने में मदद करता है कि विभिन्न समयों में समाज ने स्त्री को कैसे देखा, उसे किन भूमिकाओं में बाँधा और किस प्रकार स्त्री ने अपनी पहचान को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया। इस शोध के द्वारा हिंदी फ़िल्मी गीतों की यात्रा के माध्यम से उसके विभिन्न प्रकारों तथा प्रमुख हिंदी फ़िल्मी गीतकारों का परिचयात्मक अध्ययन के द्वारा उनकी स्त्री दृष्टि को भी समझने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध इक्कीसवीं सदी के हिंदी फ़िल्मी गीतों का अध्ययन स्पष्ट करता है कि स्त्री-छवि अब एकरैखिक, दैवी या दासी रूपों में सीमित नहीं रह गई है। समाज, तकनीक, वैश्वीकरण, डिजिटल मीडिया और स्त्री-आत्मचेतना ने गीतों की स्त्री-प्रतिनिधि को नए आयाम दिए हैं। इस सदी के गीतों में स्त्री कभी स्वतंत्र, आत्मनिर्भर, संघर्षशील और निर्णयक्षम नायिका के रूप में उभरती है तो कभी उपभोक्तावादी दृष्टि और बाज़ारवादी सौंदर्य के दबावों में वस्तुकरण का शिकार भी दिखाई देती है। यही द्वंद्व इस शोध विषय का सबसे महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष बनकर सामने आता है।

विषय सूची

1. सिनेमा और गीत का अंतर्संबंध 2. हिन्दी फ़िल्मी और गीत की विकास यात्रा 3. हिन्दी फ़िल्मी गीतों की विकास यात्रा 4. इक्कीसवीं सदी के हिन्दी फ़िल्मी गीतों में स्त्री छवि 5. भाषा-शैली, संगीत एवं वाद्य धुन अज़ैर गीतों की सिनेमा के पर्दे पर प्रस्तुति। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ। परिशिषट।

37. यादव (विजय)

भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्र के निर्माण में हिंदी की साहित्यिक पत्रिकाओं का योगदान (विशेष संदर्भ-कविवचनसुधा, हरिचंद्र मैगजीन, कल्पना)।

निर्देशक : प्रो. संजय सिंह बघेल

Th 28125

सारांश

इस प्रकार राष्ट्रवाद के स्वरूप को विद्वानों ने अपने-अपने अनुसार देखा-परखा और परिभाषित किया है। कोई इसके सकारात्मक पहलू को देखता है तो कोई नकारात्मक पहलू को। फिर भी विद्वानों की दी गई परिभाषाओं के आधार पर यह तो कहा जा सकता है कि राष्ट्रवाद के लिए भाषा की एकता, जातीय एकता, धार्मिक एकता, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परंपरा की एकता, राजनैतिक एकता और भौगोलिक एकता जैसे तत्वों की अवश्यकता होती है। इन्हीं तत्वों से मिलकर राष्ट्र या राष्ट्रवाद का स्वरूप तैयार होता है। वे राजभक्ति के कलंक को 'कविवचनसुधा' से धोते हैं और स्वयं को राष्ट्रभक्त होने का प्रमाण देते हैं। 'कविवचनसुधा' भारतेन्दु की साहित्य साधन का वह प्रतिफल है जो उनकी लेखनी को मुखर करती है और नया तेवर देती हैं। समग्रता में देखें

तो हिन्दी के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को कल्पना ने पहले ही अंक की संपादकीय में व्यक्त कर दिया था, जो उसके अंतिम अंक तक जारी रहा। कल्पना से जुड़े लोगों ने न केवल हिन्दी भाषा का स्वयं प्रचार-प्रसार किया बल्कि लोगों में हिन्दी के प्रति आस्था भी जगाई और उससे स्नेह करना सिखाया। साथ हिन्दी से जुड़े साहित्यकारों, पाठकों को जोड़कर यह प्रयास किया कि हिन्दी राष्ट्रभाषा बने लेकिन राजनीतिक कारणों और कुछ सीमाओं के कारण ऐसा संभव नहीं हो सका। हिन्दी भाषा के साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति कल्पना का रवैया सकारात्मक रहा। हिन्दी को व्याकरणिक रूप से मजबूत करने और सुधार लाने के लिए जो प्रयास किए वह कल्पना की विशेष उपलब्धि है। भारतीय संस्कृति की उदारता,करुणा, अहिंसा का भाव और विभिन्न धर्मों के समन्वय की भावना उसे विश्वगुरु बनाती है। राष्ट्र और संस्कृति का एक दूसरे से आत्मा और देह की तरह जुड़े हैं। सांस्कृतिक विरासत जितनी मजबूत होगी राष्ट्र उतना ही मजबूत होगा।

विषय सूची

1. राष्ट्र और संस्कृति की अवधारणा 2. साहित्यिक पत्रकारिता में राष्ट्रीय व सांस्कृतिक चेतना 3.'कविवचनसुधा' में राष्ट्रीय व सांस्कृतिक चेतना 4. 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में राष्ट्रीय व सांस्कृतिक चेतना 5. 'कल्पना' में राष्ट्रीय व सांस्कृतिक चेतना। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

38. यु बेबे

काशीनाथ सिंह की कहानियों की संवेदना और भाषा।

निर्देशक : प्रो. रामनारायण पटेल

Th 28126

सारांश

भारत के स्वतंत्रता के बाद हिंदी कहानी ने खुद को स्वतंत्र भारत की परिस्थितियों से जोड़ा और आम लोगों के जीवन की कठिन और जटिल वास्तविकताओं में व्यक्त किया। काशीनाथ सिंह हिंदी साहित्य के प्रमुख कथाकारों में से एक हैं। उनकी कहानियाँ न केवल अपने कथ्य में बेजोड़ हैं बल्कि शिल्प के स्तर पर भी एक नए आयाम को प्रस्तुत करती हैं। यह शोध-प्रबंध काशीनाथ सिंह की कहानियों को अध्ययन के मूल के रूप में लेता है, जिसका उद्देश्य उनकी कहानियों में निहित संवेदना का दुनिया और उनकी अनूठी भाषा शैली का गहराई से विश्लेषण करना है। यह शोध-प्रबंध पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय है---'साहित्य की संवेदना और भाषा'। द्वितीय अध्याय है---'हिंदी कहानी की यात्रा'। तृतीय अध्याय है---'काशीनाथ सिंह: व्यक्तित्व एवं कृतित्व'। चतुर्थ अध्याय है---'काशीनाथ सिंह की कहानियों की संवेदना के विविध आयाम'। पंचम अध्याय है---'काशीनाथ सिंह की कहानियों का भाषिक संदर्भ'। मैंने काशीनाथ सिंह की कहानियों का गहन अध्ययन करने के लिए पाठ विश्लेषण, भाषाविज्ञान, समाजशास्त्र और पाठक स्वीकृति सिद्धांत जैसी विधियों का उपयोग किया है। उनकी कहानियाँ समकालीन समाज के ज्वलंत समस्याओं को गहराई से छूती हैं, वे वास्तव में बदलते सामाजिक-राजनीतिक परिवेश,

शहरी जीवन, आर्थिक तनाव, ग्रामीण समस्याओं और सांस्कृतिक परिवर्तन को दर्शाती हैं। मैं काशीनाथ सिंह की कहानियों पर शोध करने वाला पहला विदेशी शोधार्थी हूँ। संवेदना और भाषा का गहन अध्ययन चीन में आधुनिक भारतीय साहित्य और कहानियों को समझने के लिए अधिक व्यापक और गहन परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है। यह शोध अंतर्राष्ट्रीय मंच पर काशीनाथ सिंह के कार्यों के प्रसार और आदान-प्रदान को बढ़ावा देगा और हिंदी साहित्य को बढ़ावा देने में भी मदद कर सकता है। इससे भारत और चीन साहित्यक-सांकृतिक संबंध बनेंगे और नयी दृष्टि का भी सूत्रपात होगा। ऐसा मेरा विशास है।

विषय सूची

1. साहित्य की संवेदना और भाषा 2. हिन्दी कहानी की यात्रा 3. काशीनाथ सिंह : व्यक्तित्व एवं कृतित्व 4. काशीनाथ सिंह की कहानियों की संवेदना के विविध आयाम 5. काशीनाथ सिंह की कहानियों का भाषिक संदर्भ। उपसंहार। परिशिष्ट। संदर्भ ग्रंथ सूची।

39. ऋतु

हिंदी आंचलिक कथा साहित्य में पलायन की पीड़ा (विशेष संदर्भ-उत्तराखंड के साहित्यकार)।

निर्देशक : प्रो. रामनारायण पटेल

Th 28127

सारांश

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का प्रथम अध्याय 'आंचलिकता एवं हिंदी कथा साहित्य है' जिसके अंतर्गत आंचलिकता की अवधारणा, हिन्दी कथा साहित्य में आंचलिकता, हिन्दी के प्रमुख आंचलिक कथाकार एवं उनका आंचलिकता बोध का विस्तृत अध्ययन किया गया है। द्वितीय अध्याय में हिन्दी कथा साहित्य में पलायन के संदर्भ पर विचार किया गया है। इस अध्याय में पलायन का अर्थ, परिभाषा बताते हुये प्रेमचंद पूर्व एवं प्रेमचंदोत्तर हिन्दी कथा साहित्य में व्यक्त पलायन को विशेष रूप से उल्लेखित किया है। इस अध्याय में पलायन को अनेक संदर्भों में व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है।तृतीय अध्याय: उत्तराखंड का आंचलिक कथा साहित्य : पलायन का संदर्भ है, प्रस्तुत अध्याय में उत्तराखंड के आंचलिक कथा साहित्य को दो संदर्भों में समझने का प्रयास किया है क-पलायन बोध एवं ख-आंचलिक बोध। इस अध्याय में उत्तराखंड के जन-जीवन एवं उनके जीवन में उपस्थित अनेक समस्याओं का अंकन किया गया है। इस अध्याय में भौगोलिक संघर्ष: भौगोलिक संघर्ष: पहाड़ सा कठिन जीवन, आर्थिक: नौकरी, व्यवसाय, कृषि, श्रम सामाजिक- सांस्कृतिक: रीति-रिवाज, प्रथा-कु-प्रथा, लोकविश्वास, अंधपरम्पराएँ आदि संदर्भों को उत्तराखंड के आंचलिक आईने में समझने का प्रयास किया गया है। चतुर्थ अध्याय:उत्तराखंड के आंचलिक उपन्यास : पलायन का संदर्भ, प्रस्तुत अध्याय में उत्तराखंड अंचल को आधार बनाकर लिखे गए वो उपन्यास जिनमें पलायन को संदर्भित किया गया है उनकी चर्चा की गयी है। सर्वप्रथम इस अध्याय में उत्तराखंड अंचल से संबन्धित प्रमुख रचनाकारों का एक संक्षिप्त परिचय दिया गया है। पंचम अध्याय उत्तराखंड की आंचलिक कहानियाँ : पलायन का संदर्भ। यह अध्याय इस शोध प्रबंध का अंतिम

अध्याय है, जिसमे उत्तराखंड अंचल की वो तमाम महत्वपूर्ण कहानियाँ, जिनमें पलायन की पीढ़ा का अवरेखन है, उनको उल्लेखित किया गया है। समस्त आंचलिक कहानियाँ जो बड़ी ही मार्मिकता से इस पलायन रूपी विश को अवरेखित करती हैं उनको विस्तार से अंकित किया गया है।

विषय सूची

1. आंचलिकता और हिन्दी हिन्दी कथा साहित्य 2. हिन्दी कथा साहित्य : पलायन का संदर्भ 3. उत्तराचखंड का आंचलिक कथा साहित्य : पलायन का संदर्भ 4. उत्तराखंड के आंचलिक उपन्यास : पलायन का संदर्भ 5. उत्तराखंड की आंचलिक कहानियॉं : पलायन का संदर्भ। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

40. रवि

हिंदी संत काव्य में वैज्ञानिक दृष्टि का अध्ययन (कबीर, रैदास और जंभेश्वर के विशेष संदर्भ में)।
निर्देशक : प्रो. संजय सिंह बघेल
Th 28128

सारांश

मेरा शोध विषय 'हिंदी संत काव्य में वैज्ञानिक दृष्टि का अध्ययन (कबीर, रैदास और जंभेश्वर के विशेष संदर्भ में) है। कबीर, रैदास और जंभेश्वर ने विज्ञान के महत्व, विविध आयामों तथा सोपानों पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला है। भौतिक, रसायन, वनस्पति, चिकित्सा, अनुवांशिकी, खगोल आदि क्षेत्रों में विभिन्न पक्षों को लेकर उनकी प्रचुर गति थी। प्रस्तुत ग्रंथ में इस संबंध में सोदाहरण प्रस्तुतीकरण निबद्ध किया गया है। प्रस्तुत शोध में विज्ञान की लगभग सभी शाखाओं का समावेश किया गया है। कबीर, रैदास और जंभेश्वर जैसे निर्गुणवादी संत बौधिक परंपरा का प्रतिनिधित्व करते हैं। कबीर, रैदास और जंभेश्वर की रचनाएं सत्य पर आधारित और व्यावहारिक दृष्टिकोण से अनुमोदित हैं। उनका चिंतन ज्ञान-विज्ञान की अनेकानेक शाखाओं से अपना सामंजस्य बना कर चलता है। इन संतों की रचनाओं के विज्ञान संबंधी तत्वों को विश्लेषित करते हुए इस ग्रंथ को लिखा गया है।

विषय सूची

1. संत काव्य की अवधारणा और विचार 2. वैज्ञानिक दृष्टिकोण : एक परिचयात्मक अध्ययन 3. संत काव्य परंपरा और वैज्ञानिकता 4. कबीर, रैदास और गुरू जंभेश्रवर के काव्य में वैज्ञानिक आयाम। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

41. राज कुमार

समकालीन हिन्दी दलित कहानियों में संवेदनात्मक संघर्ष का अध्ययन (सन् 2000 से अब तक)।
निर्देशक : डॉ. हंसराज
Th 28129

सारांश

समकालीन हिन्दी दलित कहानी भारतीय साहित्य की एक महत्वपूर्ण धारा है, जो दलित समुदाय की वर्तमान स्थिति, संवेदनात्मक संघर्षों और चुनौतियों को दिखाता है साथ ही उनकी अस्मिता की पहचान और परिवर्तन की मांग करती है। ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में दलितों को किस तरह का अपमानित जीवन जीना पड़ता है और अपने मनुष्योचित अधिकारों को प्राप्त करने के लिए कितनी यातनाएं सहनी पड़ती है। इसी यातनाओं और संवेदनात्मक संघर्षों का यथार्थवादी दृष्टिकोण दलित कहानी का केन्द्र रहा है। एक सजग साहित्यकार की आंतरिक दृष्टि सामयिक, समाजोन्मुख और संवेदनशील होती है अध्ययन के आधार पर शिल्प और आकार की दृष्टि से समकालीन हिन्दी दलित कहानियों की विषय वस्तु में निरंतर परिवर्तन देखने को मिल रहे है। इस परिवर्तन में दलित समाज की समस्याओं से जुड़े कई महत्वपूर्ण एवं गंभीर विषय उभर कर आ रहे है। जिसका अध्ययन विश्लेषण कहानियों के आधार पर किया गया है। दलित साहित्य का मूल उद्देश्य सामाजिक भेदभाव और अन्याय का कड़ा विरोध करना है । दलित साहित्य दलित समाज की वास्तविक पहचान कराने वाला साहित्य है। मुख्यतः दलित कथाकारों ने कहानी में दो युग्मों का होना आवश्यक है। पहला भेदभाव जैसे व्यवस्था का विरोध करना और दूसरा जीवन में परिवर्तन का संकल्प बनाए रखना। वस्तुतः समकालीन हिन्दी दलित कहानियाँ दलित समुदाय की वर्तमान स्थिति, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं और उनके संघर्षों को यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत करती है। भारतीय वर्ण-व्यवस्था ने वंचित समुदाय के साथ घोर अन्याय और शोषण किए है। जिसकी दासता भले ही इतिहास के पन्नों पर दर्ज ना हो, लेकिन आधुनिक युग में जब ज्ञान की आँधी चली तो सदियों से विषमता में जीवन जीने के लिए बाध्य वंचित और शोषित समुदाय को मानव अधिकारों का ऐहसास हुआ। सवैधानिक संरक्षण के अंतर्गत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ने उन्हे बोलने का अधिकार दिया। जिसके परिणामस्वरूप दलित साहित्य का जन्म हुआ। जिसमें हिन्दी दलित कहानियों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सदियों से शोषित, पीड़ित एवं उपेक्षित समुदाय की त्रासदियों और दु:खों से उपजी मानवीय संवेदनाएं हिन्दी दलित कहानियों के माध्यम से प्रतिरोध के रूप में अभिव्यक्त हुई और सम्पूर्ण दलित और वंचित समुदाय को एक नवीन चेतना का मार्ग दिखाया । अतः हम यह कह सकते है कि समकालीन हिन्दी दलित कहानी एक नये सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की दिशा की ओर संकेत करती है। यह परिवर्तन की दिशा दलित कहानीकारों की कहानियों में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इन कहानीकारों ने दलित समाज से जुड़े विभिन्न विषयों को अपनी कहानियों में उठाया है जैसे सामाजिक भेदभाव, जातिवाद और छुआछूत, हिंसा और अत्याचार, दलितों में समंजस्य का अभाव, शिक्षा में निजीकरण दुष्परिणाम, पितृसत्तात्मक समाज और स्त्री-मुक्ति, शिक्षा, जागरूकता, स्वावलंबन, अभाव की ज़िंदगी और संघर्ष का चित्रण, कामकाजी दलित समाज की समस्याएँ, और दलितों में शिक्षा और जागरूकता का अभाव आदि तमाम विषयों को उठाया है।

विषय सूची

1. हिन्दी दलित साहित्य विमर्श की अवधारणा 2. समकालीन हिन्दी दलित कहानी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 3. समकालीन हिन्दी दलित कहानियों में स्त्री चरित्र 4. समकालीन हिन्दी दलित कहानियों में सामाजिक कुरीतियों की विवेचना 5. दलित कहानियों की भाषा। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची। साक्षात्कार।

42. रीना

रीतिबद्ध और रीतिमुक्त काव्य में अभिव्यक्त प्रकृति का तुलनात्मक अध्ययन।

निर्देशिका : प्रो. सीमा शर्मा

Th 28130

सारांश

हिंदी साहित्य में 'उत्तरमध्यकाल' का रीतिकाल के रूप में स्वीकृत है। रीतिकालीन काव्य का समय मुख्यतः संवत् 1700 से 1900 तक माना जाता है। उत्तरमध्यकालीन काव्य को मुख्यतः तीन धाराओं (रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त काव्यधारा) में विभाजित किया जाता है। प्रस्तुत शोध प्रबंध के अंतर्गत रीतिकालीन काव्य की रीतिबद्ध तथा रीतिमुक्त काव्यधारा पर विस्तार से विवेचन किया गया है। काव्य की उत्पत्ति संवेदनशील कवि के हृदय का उद्गार रही है। प्रायः काव्य के विधान में कवि के अंतर्मन में उपजते विचारों, भावों या कहें कि उसके व्यक्तित्व का प्रतिबिंबित होती है। सुखात्मक एवं दुखात्मक अनुभूतियाँ कवि के माध्यम से अभिव्यक्ति पाकर सर्वजगत की अनुभूति तथा अनुभव बन जाती है। रीतिकालीन कवियों ने भक्तिकालीन कविता-कामिनी को मंदिर के प्रांगण से निकाल कर राज दरबारों एवं आमजन के मध्य पहुँचानें का श्रेय प्रदान किया जाता है। रीतिकालीन कवियों के काव्य विषय में आने वाले राधा और श्रीकृष्ण का आलौकिक देवत्व रूप परिवर्तित हो गया; अब वह काव्य में सामान्य नायक-नायिका के रूप में की जाने वाली चेष्टाएँ कर धरातल पर विद्यमान प्रेमी-प्रेमिका के रूप में उल्लेखित होने लगे। रीतिकालीन काव्य में वर्णित राधा कृष्ण का चित्रण अब स्वतंत्र न होकर काव्यशास्त्र परंपरा का अनुसरण कर लिया जाने लगा था। रीतिकालीन कविता विशेषत: रीतिकाव्य अब संस्कृत आचार्यों द्वारा बनाई गई परंपरा का अनुकरण कर राजमार्ग पर रचित होने लगी। रीतिकालीन काव्य में जहाँ काव्यशास्त्रीय पंरपरा को आधार बना कर कविता रचने वाले कवियों की बहुलता देखी जा सकती है, एक वर्ग ऐसे भी कवियों का रहा है जो शास्त्रीय प्रभावों से कोसों दूर था। हृदयानुभूति ही इन कवियों के लिए सर्वोपरि थी। काव्य में इन कवियों के निजी अनुभव द्वारा उत्पन्न प्रणयानुभूति, विरद्वानुभूति, पीड़ा, दुःख, मानवीय एवं ईश्वरीय पेम से आधिल्य के कारा रहस्यानुभूति आदि भी दृष्टिगत होती है। ये भावानुभूति था इनकी आत्मानुभूतियाँ रही है। अस्तु! यह रीतिमुक्त कवि माने जाते हैं।

विषय सूची

1. प्रकृति : अर्थ एवं स्वरूप तथा रीतिकालीन काव्य 2. काव्य एवं प्रकृति : अंतर्संबंध तथ परंपरा 3. रीतिबद्ध और रीतिमुक्त काव्य में प्रकृति चित्रण के आयाम 4. रीतिबद्ध और रीतिमुक्त काव्य में प्रकृति का तुलनात्मक अध्ययन। निष्कर्ष। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

43. रेनू

प्रियदर्शन के समग्र साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

निर्देशिका : प्रो. रजत रानी आर्य

Th 28131

सारांश

प्रस्तुत शोध कार्य प्रियदर्शन के साहित्य पर आधारित है जिसमें उनकी दृष्टि मानवतावादी है। युवा अवस्था में प्रियदर्शन वाम चेतना से प्रेरित थे जो क्रांति का बिगुल बजाने में सक्षम है। बचपन से प्रियदर्शन पढ़ने में सक्षम थे और बाद में लिखने की ओर भी प्रवृत हो गए। मानवतावादी दृष्टि उनके चिंतन का पहला सोपान है। प्रियदर्शन के साहित्य का अध्ययन कर यह कहा जा सकता है कि प्रियदर्शन एक कवि , एक कथाकार , निबंधकार , आलोचक और पत्रकार है। किसी रचनाकार के साहित्य और उसका महत्व इस बात में है कि उसका साहित्य पाठकों से किस सीमा तक जाकर संवाद स्थापित करता है। ऐसे में प्रियदर्शन और उनका साहित्य असंदिग्ध है। प्रियदर्शन की कृतियां देश और काल की सीमा लांघ कर पाठकों के साथ आत्मीय संवाद करती है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समसामयिक जीवन की समस्याओं और कटु सच्चाइयों से अवगत कराया है। उनका साहित्य अपने समाज का आईना है। जिस समय प्रियदर्शन ने लिखना शुरू कर दिया था वह उदारीकरण और वैश्वीकरण का समय था। आर्थिक सुधारों का यह समय समाज पर किस तरह का प्रभाव डाल रहा है यह प्रियदर्शन की रचनाओं में देखा जा सकता है। यह काल सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से उथल पुथल का काल रहा है। इनकी रचनाएँ तीन दशकों को समेटती है। जो साहित्य, संस्कृति, इतिहास, शिक्षा, पत्रकारिता, समाज इत्यादि विषयों को गंभीरता से उठाती है। मैंने अपने शोध कार्य में अध्ययन, विश्लेषण और समाजशास्त्रीय पद्धिति का उपयोग किया है।इनका साहित्य भावशून्य और विचारशून्य समाज में जागृति लाने का सफल प्रयास करता है। इनके साहित्य में शोषितों और पीड़ितों के प्रति सहज चिंता देखने को मिलती है। ये समाज में न्याय और समता के पक्षपाती है। विचारवान और निर्भीक लेखक के रूप में महत्वपूर्ण विषय को उठाते है। ये समाज के तमाम भेदों को मिटाने का कार्य करता है। लेखक होने के साथ पत्रकार के भी दायित्व का निर्वाह सफलतापूर्वक किया गया है। इनका साहित्य में मान्यताओं और नूतन मूल्यों की स्थापना की है जिसके केंद्र में समानता और सामाजिक न्याय है।

विषय सूची

1. प्रियदर्शन का व्यक्तित्व और कृतित्व 2. प्रियदर्शन का कथा साहित्य 3. प्रियदर्शन का काव्य और गजल साहित्य 4. प्रियदर्शन की आलोचना 5. प्रियदर्शन की सृजन यात्रा के विविध आयाम। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची। साक्षात्कार।

44. लवलेश कुमार

मतिराम और पद्माकर की काव्यभाषा का तुलनात्मक अध्ययन।

निर्देशिका : प्रो. राजमोहिनी सागर

Th 28132

सारांश

तुलनात्मक अध्ययन ज्ञान की सभी शाखामों से संबंधित एक सार्थक अध्ययन प्रणाली है। ज्ञान के सभी क्षेत्र इससे जुड़े हुए है। तुलना का सामान्य अर्थ होता है कि दो वस्तुओं को आपस में मापना, तोलना या जांच करना। किन्तु जब यह अध्ययन प्रणाली से जुड़ जाता है तो इसका अर्थ और अधिक विस्तृत और व्यापक हो जाता है। अपने इस विवेचन के आधार पर मैंने तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययन की परिभाषा देने का प्रयास किया है। तुलनात्मक साहित्यिक अध्ययन साहित्य की मूल सृजन प्रक्रिया के विभिन्न पक्षों को उजागर करता हुआ, उस साहित्य के साथ उसके सकारात्मक अथवा नकारात्मक या दोनों ही पक्षों को हमारे सामने प्रकट करता है। इसी प्रकार जब 'मतिराम और पद्माकर की काव्यभाषा का तुलनात्मक अध्ययन' करते है तो प्रश्न उठ जाता है कि किस कवि का काव्य श्रेष्ठ है ? किस कवि की भाषा श्रेष्ठ है ? और कैसे ? ये सभी प्रश्न के उत्तर तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा ही मिल पाते हैं। काव्यभाषा, अभिप्राय, तत्त्व और वैशिष्ट्य को बताया गया है। काव्यभाषा की परिभाषा और उससे संबंधित विद्वानों की परिभाषा का वर्णन किया गया है। काव्यभाषा के कौन- कौन से तत्त्व है उसको विस्तार से बताया गया है। भाषा जितनी सहज एवं सामान्य क्रम में विचारों के आदान-प्रदान में सहायिका बनी रहती है। मनुष्य अपने भावों तथा विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए भाषा का सहारा लेता है। मानव का समस्त विकास तथा ज्ञान की सभी शाखाएँ भाषा के ही फलस्वरूप विकसित हो पाई है।भाषा जीवन में इतनी महत्त्वपूर्ण होती है कि हम भाषाविहीन समाज की कल्पना तक भी नहीं कर सकते हैं। मतिराम और पद्माकर के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व के बारे में बताया गया है। मतिराम और पद्माकर की काव्यभाषा वर्णन किया गया है। काव्यभाषा की संरचना मूलत:शब्दों पर आधारित होती है। कवि अपनी भावनाओं एवं अनुभूतियों को शब्दों के द्वारा ही मूर्त रूप प्रदान करता है जो कविता कहलाती है। कविता शब्दों की बाह्य संगति पर आधारित होती है। शब्दों की यह संगति व्याकरण पर आधारित होती है जहाँ उन्हें विभिन्न दृष्टियों को ध्यान में रखकर भाव,गुण,क्रिया आदि के आधार पर बाँटा जाता है जो भाषा का व्याकरण कहलाता है। कवि अपनी कविता में जब अपनी अनुभूतियों को रखता है तो इसके लिए उसे इन्हीं तत्त्वों का सहारा लेना पड़ता है। कविता की भाषिक संरचना के आंतरिक तत्त्व कहे जाने वाले शब्द भंडार ,मुहावरे और लोकोक्तियाँ, शब्द शक्तियों, बिंब, प्रतीक, अलंकार, छंद आदि सब कविता में आ जाते है।किसी बात को पाठक तक झटपट पहुँचा देना, वह भी भाव की सुंदरता के साथ तथा थोड़े शब्दों में यह काव्यभाषा का एक विशेष गुण माना जाता है । मतिराम और पद्माकर के काव्य में विचार धारा के अनुसरण का विस्तार से वर्णन किया गया है। दोनों ही कवियों के विचार कहाँ मिलते है और कहाँ नहीं मिलते है उसका चित्रण किया

गया है। रीतिकाल की कविता काव्यकला कसौटी पर कसी हुई अभिव्यक्ति की कलात्मक प्रस्तुति है, जिसका कलापक्ष साहित्यिक कलात्मक के चरमशिखर पर अवस्थित है। ऐसा शायद इसलिए कि पूर्ववर्ती भक्तिकाल में कविता का अनुभूतिपक्ष इतना प्रबल और उच्चकोटि का है कि रीतिकाल के कवियों को उस दिशा में अब और अधिक आगे बढ़ाने की गुंजाइश नहीं बची थी। तब कविता के अभिव्यक्ति पक्ष को सजाने-सँवारने और निखारने के अतिरिक्त कोई मार्ग न था। इसीलिए रीतिकाल की कविता में कलात्मक पक्ष बहुत ही मोहक और आकर्षक है। जिसमें शाब्दिक चमत्कार के विविध चित्र आकर्षित करते हैं।

विषय सूची

1. तुलनात्मक अध्ययन, स्वरूप, महत्व और आधार 2. काव्यभाषा अभिप्राय, तत्व और वैशिष्ट्य 3. मतिराम और पद्माकर का जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व 4. मतिराम और पद्माकर की काव्यभाषा का तुलनात्मक अध्ययन 5. मतिराम और पद्माकर के काव्य में विचारतत्व का अनुसरण। उपसंहार। सन्दर्भ ग्रंथ सूची।

45. वर्मा (श्रद्धा)

21वीं सदी के साहित्य में उभरते विमर्शों का आलोचनात्मक मूल्यांकन (2000-2020)।

निर्देशिका : प्रो. साधना शर्मा

Th 28796

सारांश

21वीं सदी के आरंभ से साहित्य में दलित, स्त्री, आदिवासी, दिव्यांग, पर्यावरण, तथा एलजीबीटीक्यू विमर्शों ने अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज की है। इन विमर्शों ने परंपरागत साहित्यिक दृष्टियों को चुनौती देते हुए साहित्य को नई संवेदनात्मक गहराई, वैचारिक प्रासंगिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व प्रदान किया है। इस शोध विषय ने 2000-2020 के बीच विकसित इन विमर्शों का आलोचनात्मक विश्लेषण किया है। इस अध्ययन में विशेष रूप से तीन आयामों पर ध्यान केंद्रित किया गया है—(i) भाषा और शिल्प में नवाचार, (ii) भावबोध और वैचारिकी की संरचना, तथा (iii) साहित्य और समाज के अंतर्संबंध। शोध पद्धति के रूप में तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक तथा पाठ-आधारित आलोचना का प्रयोग किया गया है, जिससे विभिन्न विमर्शों की भाषिक-शैलीगत और भावनात्मक विशेषताओं को परखा गया है। इस शोध के अंतर्गत यह भी देखा गया कि विमर्शों ने परंपरागत साहित्यिक मान्यताओं को चुनौती देते हुए किस तरह एक वैकल्पिक सौंदर्यशास्त्र गढ़ा तथा साहित्य में हाशिए की आवाज़ों को मुख्यधारा में लाने का कार्य किया। इस प्रक्रिया में भावनात्मक अभिव्यक्ति मुखर हुई है और वैचारिक गहराई, ऐतिहासिक अनुभव और सामाजिक संघर्ष की तीव्रता भी साहित्य में दिखाई देती है। इस प्रकार यह शोध 2000–2020 के बीच उभरते विमर्शों को समझने का एक आलोचनात्मक उपक्रम है, जो साहित्य को समाज की गहरी संरचनाओं और बदलते यथार्थ से जोड़कर उसकी जीवंतता को प्रमाणित करता है। शोध के निष्कर्ष के अनुसार 21वीं सदी का साहित्य सामाजिक यथार्थ का परावर्तन करता है और वह हाशिए की आवाज़ों को केंद्र में लाकर एक नए साहित्यिक प्रतिमान का निर्माण करता है। इन विमर्शों ने साहित्यिक परिदृश्य को लोकतांत्रिक

मूल्यों, अस्मिता की चेतना, सांस्कृतिक विविधता और परिवर्तनशील संवेदना से समृद्ध किया है। यह शोध समकालीन हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है, और भविष्य की साहित्यिक एवं सामाजिक दिशाओं को समझने हेतु एक वैचारिक ढाँचा भी उपलब्ध कराता है।

विषय सूची

1. इक्कीसवीं सदीः अवधारणा और स्वरूप 2. 2000-2020 के साहित्यिक विमर्श : एक परिचय 3. विमर्शों के भावबोध का मूल्यांकन 4. विमर्शों की सीमाएँ, संघर्ष औ संवैधानिक परिप्रेक्ष्य 5. विमर्शों में शिल्प-संरचनात्मक मूल्यांकन। उपसंहार। सन्दर्भ सूची।

46. शर्मा (रूचि)

महामति प्राणनाथ के काव्य में युगबोध।

निर्देशक : प्रो. रामनारायण पटेल एवं प्रो. सुधा सिंह

Th 28133

सारांश

अतः महामति प्राणनाथ की वाणी में समसामयिक परिस्थितियों का पूर्णरूपेण अवलोकन किया गया है। महान साहित्यकार वही कहा जाता है जो अपने समाज अथवा राष्ट्र को शाश्वत मूल्य प्रदान करता है। इस दृष्टि से महामति प्राणनाथ हिंदी के महान साहित्यकार कहे जाने चाहिए। उन्होंने हिंदी साहित्य की महान परंपरा में भक्ति और शक्ति के समन्वित सिद्धांत द्वारा क्षीण पड़ती जा रही धारा को पुनः संचरित किया और एक नवीन जीवन दर्शन को जन्म दिया। उन्होंने अपने विलक्षण बुद्धि एवं व्यक्तित्व के बल पर शताब्दियों से सोयी हुई भारतीय जनता को `जागनी अभियान` द्वारा जागृत किया और वीर-योद्धा के रूप में शिष्य महाराजा छत्रसाल की खोज कर विशेष उपलब्धि हासिल कीं। अपना समस्त जीवन राष्ट्र को समर्पित किया। उन्होंने अपनी गुरु परंपरा की महान विचारधारा तथा उनके उपदेश के पालन हेतु दिए गए लक्ष्य के पूर्ण करने के लिए अपने अस्तित्व को `प्रणामी संप्रदाय` में समाहित कर दिया। जिसमें आज के समय में लगभग 50 लाख से ज़्यादा (सुन्दरसाथ) अनुयायी शामिल हैं, जो उनके अस्तित्व को सजीवता प्रदान करते हैं।

विषय सूची

1. प्रवास : स्वरूप और विश्लषण 2. प्रवासी साहित्य : पृष्ठभूमि और परंपरा 3. तेजेन्द्र शर्मा का कथा संसार 4. तेजेन्द्र शर्मा के कथा-साहित्य में प्रवासी समाज के विविध पक्ष 5. तेजेन्द्र शर्मा के कथा-साहित्य में प्रवासी भारतीय समाज का विश्लेषण। उपसंहार। परिशिष्ट। संदर्भ ग्रंथ सूची।

47. शिखा

हिन्दी के चरितमूलक उपन्यासों का विश्लेषण (आदिकालीन एवं मध्यकालीन कवियों के विशेष संदर्भ में)।

निर्देशक : प्रो. प्रदीप कुमार एवं प्रो. अनिल राय

Th 28134

सारांश

मेरे शोध विषय का उद्देश्य आदिकालीन एवं मध्यकालीन कवियों के ऊपर लिखे गए चरितमूलक उपन्यास में प्रस्तुत की गयी सामाजिक संरचना और उनके वैचारिक आयामों का विश्लेषण करना है। इन कवियों की रचनाएं बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में किस तरह के नवीन एवं मौलिक विचारों की अभिव्यक्ति करती हैं? जिसको आधार बनाकर आधुनिक साहित्य के लेखकों ने उपन्यास लिखे। इन उपन्यासों में निहित मानवीय मूल्यों एवं नैतिकताओं के क्या मायने हैं? उन कवियों का साहित्य किन सामाजिक चुनौतियों और विसंगतियों पर जोर देता हुआ दिखाई देता है। उन पक्षों पर प्रकाश डालने में उपन्यासकार कहां तक सफल हुए? किसी ऐसे व्यक्ति विशेष के जीवन चरित को उपन्यास का रूप देना, जिनके बारे में प्रायः इतिहास ग्रंथ मौन हैं। उनके जीवन से जुड़ी घटनाओं के विषय में जनश्रुति, किवदंतियाँ ही सुनने को मिलती हैं। ऐसी स्थिति में उपन्यासकार उन कवियों के जीवन गाथा को एक औपन्यासिक सूत्र में गढ़ने के लिए कुछ काल्पनिक चरित्र, घटना आदि का भी निर्माण करता है। हालांकि उन कवियों पर साहित्य एवं समाज के सामाजिक उपादेयता की दृष्टि से कई शोध कार्य हो चुके हैं। जो उन कवियों के जीवन से जुड़े अनेक पक्षों पर प्रकाश डालते हैं। मैंने अपने शोध विषय में कवि केंद्रित उपन्यासों में उनके विचारों का सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक संदर्भ में मूल्यांकन किया है। मेरे शोध विषय के अनुरूप उन उपन्यासों में वर्णित भारतीय समाज के विविध पहलू जिसको उन कवियों ने प्रभावित किया। उन पहलुयों के रूप में एक कवि का युग प्रवर्तक के रूप में पहचान, आदर्श एवं नैतिकता, भाषा का परिमार्जन, मानव मूल्यों को स्थापित करने के वाले व्यक्तित्व के रूप में मूल्यांकन किया गया है।

विषय सूची

1. चरितमूलक उपन्यास का स्वरूप एवं परिचय 2. आदिकालीन कवियों पर आधारित चरितमूलक उपन्यासों का विश्लेषण 3. मध्यकालीन कवियों पर केंद्रित चरितमूलक उपन्यासों का विश्लेषण 4 चरितमूलक उपन्यासों में चित्रित कवियों का जीवन और उनके जीवन ऐतिहासिकता का तुलनात्मक अध्ययन 5. चरितमूलक हिन्दी उपन्यासों का भाषा एवं शिल्प पक्ष। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ।

48. शुक्ला (अतुल कुमार)

किस्सागोई की दृष्टि से हिंदी कहानी का अध्ययन (विशेष संदर्भ: प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु और काशीनाथ सिंह)।

निर्देशक : प्रो. पल्लव कुमार नंदवाना एवं डॉ. शयौराज सिंह बी.

Th 28135

सारांश

प्रस्तुत शोध विषय के अंतर्गत हिन्दी कहानी में विशेष रूप से प्रेमचंद, फणीश्वरनाथ रेणु और काशीनाथ सिंह की कहानियों में किस्सागोई के तत्वों को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

विषय सूची

1. किस्सागोई : अवधारणा और भारतीय कथा परंपरा 2. हिन्दी कहानी की परंपरा और किस्सागोई 3. प्रेमचंद की कहानियॉं और किस्सागोई 4. फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियॉं और किस्सागोई 5. काशीनाथ सिंह की कहानियॉं और किस्सागोई। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

49. शेष कुमार

संजीव और रणेन्द्र के उपन्यासों में अभिव्यक्त आदिवासी चेतना का स्वरूप ।

निर्देशक : डॉ. टेकचंद एवं डॉ. विनोद तिवारी एवं डॉ. स्नेहलता नेगी

Th 28136

सारांश

आदिवासी समुदाय की ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पहचान एवं आदिवासी साहित्य की विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं का अवलोकन। आदिवासी भारत के संवैधानिक दस्तावेजों में दर्ज इनके हकों अधिकारों एवं विभिन्न योजनाओं के तहत जोड़े गए कार्यक्रमों से कैसे जुड़े हुए हैं और यहां उन्हें कितना लाभ पहुंचा और कितना वंचित रहे। संजीव एवं रणेन्द्र के उपन्यासों में आदिवासी जीवन चेतना का परिदृश। इनके मुद्दे जैसे जब विकास की मुख्यधारा की बात आती है तो आदिवासी रोजगार,सड़क,पानी, बिजली आदि की उपलब्धता में मुख्यधारा से दूर दिखाई पड़ता है। जहां आदिवासी समुदाय अपनी संस्कृति, परम्परा,सभ्यता आदि को लेकर काफी सजग और प्रहरी के रूप में काम करता है। ऐसे में उन्हें मुख्यधारा से जोड़ने में कई सारी धारणाओं के टूटने का खतरा भी उत्पन्न होता है। गरीब, शोषित, पीड़ित, वंचित आदिवासी, स्त्री आदि को साहित्य में मुख्य बिंदु में रखने वाले एवं उनकी स्थितियों को मुखरित अभिव्यक्ति देने वाले संजीव अपने समय के अत्यंत जागरूक, चैतन्य वैज्ञानिक व तार्किक बहसों को अपने उपन्यास के माध्यम से साहित्य के केंद्रीय बिंदु में उतारते हैं। रणेन्द्र अपनी रचनाओं में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक बदलावों को बेहद सूक्ष्मता से पड़ताल करते हैं। लेखक का मानना है कि असुर समुदाय का जीवन तपते हुए लोहे की भांति एवं मुंडा समुदाय का जीवन उगते सूर्य की भांति जटिल संघर्षों की पीड़ा, वेदना, दुखों की दास्तां लिखते हुए व्यतीत हो रहा है। ये दोनों समुदाय अपने - अपने जल, जंगल, जमीनें व संस्कृतियों को बचाने में जुटी हुई हैं। असुर व मुंडा जाति कोई राक्षस या दानव नहीं है बल्कि ये भी एक संवेदनशील मानव ही हैं। दैत्य, दानव जैसे भ्रामक शब्दों को मनुवादी, वर्चस्ववादी ताकतों की उपज मात्र है। इसलिए इन मुंडा व असुर आदिवासी समुदाय को भी वही सुविधाएं प्रदान की जाएं जो सुविधाएं गैर आदिवासी समुदाय भोग रहा है।

विषय सूची

1. आदिवासी समुदाय की ऐतिहासिक, भौगोलिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पहचान 2. आदिवासी जीवन और संजीव एवं रणेन्द्र के उपन्यास : सन्दर्भ एवं रचना परिदृश्य 3. संजीव के उपन्यासों में आदिवासी जीवन एवं चेतना का स्वरूप 4. रणेन्द्र के उपन्यास और आदिवासी जीवन 5. संजीव और रणेन्द्र के उपन्यासों में भाषिक वैशिष्ट्यता। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथसूची। परिशिष्ट।

50. सदानन्द

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में गांव और शहर का बदलता परिदृश्य (विशेष संदर्भ : सन 2000 से 2020 तक के उपन्यास)।

निर्देशिका : प्रो. प्रज्ञा

Th 28137

सारांश

मुनष्य की बदलती हुई जीवन शैली, परिवारिक विघटन जीवन मूल्यों का ह्यस, गरीबी, बेरोजगारी, शिक्षा का राजनीतिकरण, नीरसता, के साथ ही, स्त्री दलित, अल्पसंख्यक किसान वर्ग में चेतना का प्रसार हुआ है जिससे अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुए। इस प्रकार समाज में हो रहे सभी प्रकार के बदलावों को नई सदी के हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्ति दी है। इक्कीसवीं सदी के हिन्दी उपन्यासों में जहाँ विषय के विविधता को अपनी पहचान बनाया वहीं स्वयं वैश्विक होते हिन्दी साहित्य का सहभागी भी बना है। उनके कथ्य में राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव और परिणाम की उपस्थिति देखी जा सकती है। इक्कीसवीं सदी में रचित उपन्यास भी बदलते हुए भारत की एक नई तस्वीर दिखा रहे हैं जिसमें ग्रामीण भारत के साथ ही शहरी क्षेत्रों में आये बदलाव को देख सकते है। इस दृष्टि से मेरा शोध विषय `इक्कीसवीं के हिन्दी उपन्यासों में गांव और शहर का बदलता परिदृश्य विशेष संदर्भ सन् 2000 से 2020 तक के उपन्यास` होगा। जिसके माध्यम से इन बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा किया जाएगा। शोध का उद्देश्य भारत में सन् 1990 के बाद आर्थिक उदारीकरण एवं भूमंडलीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। लेकिन इसका प्रभाव सन् 2000 ई. के बाद से भारत के ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में व्यापक रूप से दिखाई देने लगा। आर्थिक नीतियों के कार्यान्वयन से भारत में विदेशी कम्पनियों का प्रवेश, जनसंचार माध्यमों का विस्तार, विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्ण प्रगति, आभासी संसार का प्रसार व अन्य वैश्विक गतिविधियों ने भारतीय समाज को प्रभावित किया। समाज में हो रहे बदलाव को साहित्यकार अपनी कलम से किसी न किसी रूप में संजोता ही है। हिन्दी उपन्यासों में भी इन सभी परिघटनाओं का एक गहरा असर दिखाई देता है। इक्कीसवीं सदी के उपन्यसों में उपजी त्रासदियों, विस्थापन, उपभोक्तावादी संस्कृति, परिवार विघटन, किसान जीवन, स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक, आदिवासी, युवावर्ग, ट्रांस्जेडर वर्ग पर प्रभाव तथा परिणाम को विस्तार से दिखाया हैं। प्रस्तावित शोध विषय एवं चयनित उपन्यासों को आधार बना कर गांव और शहर में बदलती सामाजिक संरचना को रेखांकित करना तथा बदलावों की विस्तारपूर्वक पड़ताल करना मेरे शोध विषय का उद्देश्य रहा है।

विषय सूची

1. गाँव और शहर का बदलता परिदृश्य : सामाजिक परिप्रेक्ष्य 2. गांव और शहर का बदलता परिदृश्य : आर्थिक परिप्रेक्ष्य 3. गांव और शहर का बदलता परिदृश्य : राजनैतिक परिप्रेक्ष्य 4. गांव और शहर का बदलता परिदृश्य : सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य 5. गांव और शहर का बदलता परिदृश्य भाषा के परिप्रेक्ष्य में उपन्यास। उपसंहार। आधर ग्रंथ सूची।

51. सिंह (कु. बबिता)

उपन्यास, राष्ट्रीयता और कश्मीर विशेष संदर्भ : कश्मीर केंद्रित उपन्यास।

निर्देशक : प्रो. सुनील कुमार तिवारी

Th 28138

सारांश

कश्मीर जो अपनी प्राकृतिक सुंदरता के लिए जाना जाता रहा है,आज वहाँ सिर्फ हिंसा, सांप्रदायिकता और आतंकवाद ही दिखाई पड़ता हैं । कश्मीर में पहले अलगाववाद, हिंसा और सांप्रदायिकता की अनुगूँज दूर-दूर तक सुनाई ही नहीं पड़ती थी लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात पाकिस्तान ने कश्मीर में अलगाववाद,सांप्रदायिकता और आतंकवाद के बीज बोए जिनका भुगतान कश्मीरी हिंदुओं को निर्वासित होकर चुकाना पड़ा। कश्मीर आज आतंकवाद के कारण रक्तरंजित रणक्षेत्र बन गया है। कश्मीर घाटी से कश्मीरी हिंदुओं को इस नारे के साथ 'पंडितों कश्मीर छोड़कर चले जाओ और अपनी बहू-बेटियों को हमारे लिए छोड़ जाओ, कश्मीर में रहना है तो अल्ला हो अकबर कहना है, हमें पाकिस्तान चाहिए, हिंदू स्त्रियों के साथ, लेकिन पुरुष नहीं' इन्हीं नारों के साथ कश्मीरी हिंदुओं को रातों-रात कश्मीर से खदेड़ दिया गया। कश्मीर से कश्मीरी हिंदुओं के विस्थापन को लगभग तीन दशक हो गए हैं । इन तीन दशकों की इस लंबी अवधि में आतंकवादी हिंसा में अपना सब कुछ गँवा कर शरणार्थियों के रूप में भटकते हुए इस समुदाय ने जिन असहनीय यातनाओं को झेला है, जिन कष्टों, उपेक्षाओं और उदासीनता के अनुभवों से होकर गुजरे हैं उस पीड़ा को इस समुदाय के लेखकों ने अपनी रचनाशीलता का आधार बनाया है। कश्मीर केंद्रित उपन्यासों में रचनाकारों ने अपने जातीय नरसंहार की भयावह स्मृतियों और अपनी मिट्टी से उखड़ने की गहन पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। यह शोध-प्रबंध कश्मीर केंद्रित है । उपन्यास, राष्ट्रीयता और कश्मीर विशेष संदर्भ : कश्मीर केंद्रित उपन्यास शीर्षक शोध-प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया है। प्रथम अध्याय : 'उपन्यास स्वरूप और विकास' में उपन्यास के उदय और स्वरूप पर एवं हिंदी उपन्यास के विकास का सविस्तार विवेचन प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय अध्याय : 'राष्ट्र, राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता' इस अध्याय में विभिन्न विद्वानों का मत देते हुए राष्ट्र, राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता की अवधारणा पर विचार किया गया है। तृतीय अध्याय : 'कश्मीर : इतिहास, साहित्य और संस्कृति' इस अध्याय में कश्मीर के ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, और कश्मीर से संबंधित अन्य भारतीय भाषाओं के कथा साहित्य पर विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया गया है । चतुर्थ अध्याय : 'कश्मीरी मूल के उपन्यासों में कश्मीर दशा और दिशा' इस अध्याय में भारत की आजादी के बाद भारत की विकास यात्रा के साथ कश्मीर की दशा और दिशा को विवेचित किया गया है । पंचम अध्याय : 'उपन्यासों में कश्मीर : शिल्प और संवेदना' इस अध्याय में कश्मीर केंद्रित उपन्यास- कथा सतीसर,ऐलान गली जिंदा है, यहाँ वितस्ता बहती है,दर्दपुर, मूर्तिभंजन, पाषाणयुग, एक कोई था कहीं नहीं सा, रिफ्यूजी कैंप, शिगाफ़, इकबाल, कश्मीर 370 किलोमीटर, बर्फ और अंगारे, नाकाबंदी, आदि उपन्यासों में कश्मीर से कश्मीरी हिंदुओं के निर्वासन त्रासदी को व्यक्त किया गया है। कश्मीर केंद्रित उपन्यासों में भय, आतंक उत्पीड़न,

निर्वासन झेल रहे एक पूरे जन-समुदाय की पीड़ा है, और यह पीड़ा, जो पूरी तीव्रता के साथ व्यक्त हुई है, किसी एक व्यक्ति की न होकर सबकी है। वास्तविकता यह है कि इन उपन्यासों में निर्वासन के जो त्रासद अनुभवों की अभिव्यक्ति मिलती है, वह निजी संदर्भों और संवेदनाओं की नहीं है, बल्कि उन त्रासद अनुभवों से सभी विस्थापित समुदाय गुजरे हैं। यह उपन्यास वैयक्तिकता और आत्मकेंद्रिकता के संकीर्ण घेरों को लांघ कर हमें मानवीय संवेदना के व्यापक संदर्भों से जोड़ते हैं।

विषय सूची

1. उपन्यास स्वरूप और विकास 2. राष्ट्र और राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता 3. कश्मीर : इतिहास, साहित्य और संस्कृति 4. कश्मीरी मूल के उपन्यासों में कश्मीर दशा और दिशा 5. उपन्यासों में कश्मीर : शिल्प और संवेदना। उपसंहार। संदर्भ-ग्रंथ सूची।

52. सिंह (राजन)

हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त काशी की संस्कृति।

निर्देशक : डॉ. टेकचंद

Th 28139

सारांश

काशी अथवा बनारस उत्तर प्रदेश के दक्षिण पूर्व में गंगा तट पर स्थित है, काशी की सांस्कृतिक पहचान एवं उसकी वैश्विक विशेषताओं का विश्लेषण किया गया है। यह काशी नगरी भारतीय संस्कृति की मुख्य धरोहर मानी जाती है, जिसे ना केवल दुनिया का सबसे पुराना जीवित शहर माना जाता है अपितु अनेक उतार चढ़ाव एवं उथल पुथल के बावजूद अपने अस्तित्व काल के प्रारंभ से लेकर आज तक अखंड और अडिग है। काशी की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परंपराएं भी अपनी निरंतरता को बनाए हुए आज तक जीवित रूप में दिखाई देती है। इसका सूक्ष्म अध्ययन किया गया है। ज्ञान विज्ञान शिक्षा साहित्य कला संगीत और गणित, ज्योतिष, मूर्ति कला, हस्तकला आदि का भी अध्ययन किया गया है।

विषय सूची

1. काशी और काशी की संस्कृति 2. काशी की सामाजिक परत्परा के विविध आयाम 3. काशी : लोक एवं संस्कृति 3. काशी की संस्कृति और जन संरचना 4. काशी में प्रचलित मत एवं सम्प्रदाय। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ। परिशिष्ट।

53. सोनम कुमारी

मध्यकालीन भारतीय समाज का स्वरूप: हिंदी उपन्यासों के संदर्भ में।

निर्देशिका : प्रो. मंजु शर्मा

Th 28711

सारांश

प्रस्तुत शोध कार्य `मध्यकालीन भारतीय समाज का स्वरूप: हिंदी उपन्यासों के संदर्भ में` हिंदी साहित्य के उन ऐतिहासिक उपन्यासों का विश्लेषण है जिसमें मध्यकालीन भारत के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन का सजीव चित्रण मिलता है। हिंदी उपन्यास समाज के यथार्थ का दर्पण होते हुए इतिहास को संवेदना और मानवीय अनुभवों के माध्यम से पुनर्जीवित करता है। शोध का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि मध्यकालीन समाज एक जटिल, बहुआयामी और परिवर्तनशील संरचना थी जिसमें भक्ति, धर्म, नीति, श्रृंगार, वीरता और प्रेम जैसे तत्व समान रूप से विद्यमान थे। इन तत्वों ने समाज को आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दिशा प्रदान की। इस शोध में चयनित चार प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का चारुचंद्र लेख, वृंदावनलाल वर्मा का मृगनयनी, अमृतलाल नागर का मानस का हंस और शिवप्रसाद मिश्र रूद्र का बहती गंगा के माध्यम से मध्यकालीन जीवन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया गया है। इन उपन्यासों में उस युग की सामाजिक विषमताएं, नारी की स्थिति, भक्ति आंदोलन की चेतना, सत्ता-संघर्ष, आर्थिक परिवेश और लोक संस्कृति का यथार्थपरक चित्रण किया गया है। उपन्यासकारों ने इतिहास को केवल घटना की पुनरावृत्ति ना मानकर मानवीय संवेदना के धरातल पर रूपांतरित किया है।

विषय सूची

1. मध्यकालीन समाज का स्वरूप 2. हिन्दी उपन्यास और मध्यकालीन जीवन 3. मध्यकालीन जीवन के विविध रंग और हिन्दी उपन्यास 4. मध्यकालीन भारतीय समाज केंद्रित हिन्दी के उपन्यासों के पात्र, भाषा और शिल्प 5. हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासों में निहित मध्यकालीन भाव। उपसंहार। परिशिष्ट। सन्दर्भ ग्रंथ।

54. हेमंत कुमार

कृष्ण-भक्त मुसलमान कवयित्रियों की रचनाओं का संकलन और मूल्यांकन।

निर्देशक : प्रो. चंदन कुमार

Th 28140

सारांश

भारत का मध्यकाल न सिर्फ मुस्लिम आक्रमण के लिए जाना जाता है बल्कि भक्तिकालीन और रीतिकालीन कविता के लिए भी जाना जाता है। इस दौर में भक्ति चेतना इतनी प्रबल थी कि इसमें हिंदुओं के साथ-साथ कतिपय मुसलमान भी आ जुड़े। भक्ति आन्दोलन ने न सिर्फ भाषा की दीवारें गिराई बल्कि मज़हब की दीवारें भी चटकाई। इसलिए मुसलमान कवियों और कवयित्रियों का एक पूरा कुनबा भक्ति कविता करता हुआ दिखाई पड़ता है। ये कृष्ण-भक्ति की ओर ज्यादा प्रवृत हुए। इसलिए मेरा प्रस्तावित शोध विषय है -"कृष्ण-भक्त मुसलमान कवयित्रियों की रचनाओं का संकलन और मूल्यांकना" इसमें हमने पाँच कृष्ण-भक्त मुसलमान कवयित्रियों को शामिल किया है - ताज,

शेख, मुस्तरी बाई, सुंदरकली और रूपवती बेगम। ये पाँचों कृष्ण भक्त मुसलमान कवयित्रियाँ मध्यकाल की ही हैं। श्री गंगाप्रसाद विशारद अखौरी जी द्वारा लिखित 'हिंदी के मुसलमान कवि' नामक पुस्तक के अनुसार 'ताज और रूपवति बेगम भक्तिकाल की हैं, शेष का कालखंड रीतिकाल की परिधि में आता है।' इसके अतिरिक्त जहांआरा बेगम, जैबुनिशा बेगम व् पीरज़ादी ने भी कृष्ण भक्ति में स्फुट काव्य रचे हैं। किन्तु ये हमारे शोध क्षेत्र से बाहर हैं। ये पाँचों मध्यकालीन मुसलमान कवयित्रियाँ हमारे अध्ययन दायरे में हैं। इन कवयित्रियों के जीवनकाल को लेकर साहित्य चिंतकों में मतभेद रहा है। किन्तु हमने अपने शोध से इनके जन्मकाल, कविताकाल और मृत्युकाल को चिन्हित किया है। इनमें सुंदरकली, मुश्तरी और शेख रंगरेजन को हमने अपने शोध में रीतिकालीन पाया है। जबकि ताज बेगम व् रूपवती बेगम को भक्तिकाल का पाया। इन पाँचों में यह समानता है कि ये सभी मुसलमान हैं और इन्होंने कृष्ण-भक्ति के पद रचे हैं। अपने शोध में हमने इनके साम्य-वैषम्य को परखते हुए इनके पदों का संकलन किया है तथा भारतीय सांस्कृतिक बोध के संदर्भ में उसका मूल्यांकन भी किया है ।

विषय सूची

1. भक्ति चेतना और मुसलमान 2. कृष्ण-भक्त मुसलमान कवयित्रियाँ 3. ताज बेगम : पाठ और मूल्यांकन 4. शेख रंगरेजन : पाठ और मूल्यांकन 5. रूपवती बेगम : पाठ और मूल्यांकन 6. मुश्तरी और सुंदरकलीः पाठ और मूल्यांकन। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ।